महाकवि सूरकृत

गोपी-विरह और भँवर-गीत

(१५१ पदों का संग्रह)

संपादक

श्री प्रेमनारायण टंडन, एम० ए०, साहित्यरत्न



प्रकाशक

ग्रंथमाला-कार्यालय, पटना

प्रथम संस्करण]   १९४४   [मूल्य १॥।)

मुद्रक
देवकुमार मिश्र
हिंदुस्तानी प्रेस, पटना

निवेदन

प्रस्तुत संग्रह में सूरदास के १५१ चुने हुए पद हैं। ये गोपी-विरह और ऊधव-गोपी-संवाद से, जो 'भ्रमरगीत' के नाम से विख्यात है, संबंध रखते हैं। इन पदों को क्रमबद्ध-रूप में देने का प्रयत्न इस संग्रह की विशेषता कही जा सकती है। फलस्वरूप, बहुत सुन्दर और मार्मिक पदों के साथ कुछ साधारण पद भी यहाँ आ गये हैं। कथा-सूत्र बनाये रखने में सहायक जानकर ही इन्हें संकलन में रखा गया है।

गोपी-विरह और ऊधव-गोपी-संवाद के लगभग ८०० पदों में से १५१ चुन लेना बड़ा कठिन काम है और यह कठिनाई उस समय और भी बढ़ जाती है, जब अधिकांश पद मार्मिक, चमत्कार-पूर्ण और उच्च कोटि के हों। इसलिए, संभव है यहाँ संकलित पदों से सुन्दर कुछ पद बाहर ही रह गये हों; फिर भी इसके अधिकांश पदों की उत्कृष्टता के संबंध में दो मत नहीं हो सकते।

पाठ के संबंध में विशेष निवेदन करना है। 'सूरसागर' की दो-तीन प्रतियों के अतिरिक्त गोपी-विरह और 'भ्रमरगीत' से संबंधित पदों के तीन-चार संकलन—(१) स्व० पंडित रामचंद्र शुक्ल का 'भ्रमरगीत-सार' (२) डा० बेनी प्रसाद का संक्षिप्त 'सूरसागर' (३) पं० नंददुलारे वाजपेयी के 'सूर-सुषमा' और 'सूर-संदर्भ' नामक संग्रहों—के कुछ अंश अब तक प्रकाशित हुए हैं। प्रथम का पाठ स्व० शुक्लजी ने और उनके पश्चात् प्रो० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने; द्वितीय का डा० बेनीप्रसाद, डा० धीरेंद्र वर्मा और डा० रामकुमार वर्मा ने तथा तृतीय का सूरसागर-संपादक प्रो० नंददुलारे वाजपेयी ने शुद्ध किया है। इन विद्वानों के

संपादित पाठों में भी मतभेद है। प्रस्तुत संकलन में नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित होनेवाले सूरसागर के संपादन-सिद्धांतों का ही प्रधानतः अनुकरण किया गया है—यद्यपि सूर की प्रारंभिक व्रजभाषा इतनी व्यवस्थित नहीं समझनी चाहिए, जितनी इसके विद्वान संपादकों ने बना दी है।

संकलन के प्रारंभ में दिया हुआ कवि-परिचय अब तक प्राप्त सामग्री के आधार पर लिखा गया है। उसमें प्रायः सभी जीवनी-विषयक मतों की संक्षेप में विवेचना है। अंत में दिये हुए अर्थों से यहाँ संकलित पद समझने में तो सहायता मिलेगी ही, संपूर्ण भ्रमरगीत के अध्ययन की प्रवृत्ति भी जाग्रत होनी चाहिए। यदि यह आशा किसी अंश में भी पूर्ण हुई, तो मेरा प्रयत्न सफल हो जायगा।

१ जून, १९४४]

—*प्रेमनारायण टंडन*

कवि-परिचय

जीवन-सामग्री

भारतीय आचार-विचार कुछ ऐसे ढंग का रहा है कि अपने सम्बन्ध में कुछ कहना अधिकांश लेखकों और कवियों ने आवश्यक और उपयुक्त नहीं समझा। परन्तु ज्यों-ज्यों हम उनकी विद्वत्ता और काव्य-कला की श्रेष्ठता से प्रभावित होते जाते हैं, त्यों-त्यों उनका जीवन-वृत्त जानने की हमारी जिज्ञासा बढ़ती जाती है। प्राचीन कवियों के जीवन-वृत्त-सम्बन्धी साधारणतः दो प्रकार के साधन हमें उपलब्ध हैं—(१) आन्तरिक साधन का अन्तः-साक्ष्य और (२) बहिःसाक्ष्य। प्रथम अर्थात् आन्तरिक साधन से हमारा आशय जीवनचरित-सम्बन्धी उस सामग्री से है, जो संकेतरूप में हमें यत्र-तत्र कवि अथवा लेखक के ही ग्रंथों में मिल जाती है। दूसरे शब्दों में, स्वयं अपने विषय में कहे हुए कवि के कथन अन्तःसाक्ष्य के अन्तर्गत हैं। बाह्य साधन से हमारा तात्पर्य जीवनी विषयक उस साहित्य से है, जो कवि या लेखक के समकालीन अथवा परवर्ती महानुभावों की कृपा से हमें उप-लब्ध होता है। ऐसी सामग्री के अन्तर्गत हम उन किंवदन्तियों को भी समझ लेते हैं, जो कवि अथवा लेखक के जीवनकाल में

ही या उसकी मृत्यु के कुछ समय उपरान्त प्रचलित हो जाती है। जनश्रुतियों का यथार्थ मूल्य आँकने की चेष्टा करने का कारण यह है कि प्रायः इन्हीं के आधार पर परवर्ती लेखक किसी कवि के विषय में बहुत कुछ लिख दिया करते हैं।

परन्तु हमारे अधिकांश प्राचीन कवियों ने अपने विषय में ऐसी अथवा इतनी सामग्री भी नहीं छोड़ी है, जिसकी सहायता पर अथवा जिसके आधार पर उनका क्रमबद्ध और प्रामाणिक जीवनचरित तैयार किया जा सके। यही कारण है कि संस्कृत-जैसी प्राचीन भाषाओं के कवियों और लेखकों के लौकिक जीवन का ठीक-ठीक इतिहास तो हमें मिलता ही नहीं, हिन्दी और अँगरेजी जैसी आधुनिक भाषाओं की सेवा करनेवाले उन साहित्यिकों के विषय में भी हमें अधिक ज्ञात नहीं है, जो आज से लगभग तीन-चार सौ वर्ष पहले हो चुके हैं। वर्तमान युग में उन्नति करनेवाली पाश्चात्य भाषाओं—उदाहरण के लिए अँगरेजी, जर्मन आदि को ले सकते हैं—की अपेक्षा हिन्दी-जैसी भारतीय भाषाओं के लेखकों और कवियों के विषय में हमारी अनभिज्ञता अधिक बढ़ी हुई है। इसका प्रधान कारण यह है कि वहाँ मुद्रण-कला का आरंभ भारत में उसका प्रचार होने से लगभग दो सौ वर्ष पहले हो गया था। ऐसी स्थिति में सूरदास ने अपने सम्बन्ध में जो दो-एक संकेत कर दिये हैं तथा उनके विषय में जो दो-चार लेखकों ने थोड़ा-बहुत लिख दिया है, उसी की प्रामाणिकता पर विचार करके हमें सूरदास का जीवन-चरित प्रस्तुत करना है।

यहीं एक बात और स्पष्ट कर देनी है। पर सूर-काव्य के कुछ संतोषी प्रेमियों का कहना है कि महात्मा, भक्त और सर्वोत्कृष्ट कवि सूर के सम्बन्ध में इस सच्चे और ज्ञातव्य जीवनचरित—उनके काव्य में व्यक्त उनकी आत्मा के दर्शन—से ज्यादा जानने

का प्रयत्न करना वृथा है।* हमारी समझ में सूर-काव्य-प्रेमियों की यह कोरी भावुकता अन्वेषण के वर्तमान युग में साहित्य के मननशील विद्यार्थियों को संतोषी वृत्ति का पाठ पढ़ाकर हाथ-पर-हाथ रख बैठे रहने का उपदेश देने में समर्थ न हो सकेगी। पाश्चात्य देशों के अनेक प्राचीन विद्वान् और कवि अपने सम्बन्ध में वाल्मीकि, कालिदास, सूर और तुलसी के समान ही मौन रहे। फिर भी उनकी रचनाओं के अन्वेषण-प्रिय प्रेमियों ने अपने सत्प्रयत्न से उनके सम्बन्ध में पर्याप्त बातें ज्ञात कर ली हैं। हिन्दी के ही नहीं, संस्कृत के भी प्राचीन कवियों और आचार्यों के परिचय का अन्वेषण हमें भी इसी प्रकार करना चाहिए।

(१) अन्तःसाक्ष्य

सूरदास का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ सूरसागर है। इसमें कुछ पद ऐसे मिलते हैं, जिनसे कवि के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बढ़ती है। ऐसे तीन पद ये हैं—

(१) इत उत देखत जनम गयौ।
या झूठी माया कैं कारन दुहुँ दृग अन्ध भयौ॥
श्रीभागवत सुन्यो नहिं कबहूँ बीचहि भटकि मर्‌यो।†

(२) सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनों पन ऐसै ही खोये केस भये सिर सेत॥
आँखिनि अन्ध श्रवण नहिं सुनियत थाके चरन समेत।‡

---

*साहित्यलहरी सटीक—भूमिका पृष्ठ ५

† नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर। प्रथम स्कन्ध। पृष्ठ १५४। पद २९१।

‡ नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर। प्रथम स्कन्ध। पृष्ठ १५६। पद २९६।

(३) भरोसो दृढ़ इन चरनन केरौ।
श्रीबल्लभ नख चन्द्र छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरौ ॥
सूर कहा कहि दुविध आँधरौ बिना मोल को चेरौ ॥§

सूरसागर के पश्चात् सूरदास का दूसरा प्रसिद्ध ग्रंथ सूरसारावली है। विषय-विस्तार की दृष्टि से यह सूरसागर के अंतर्गत ही है। इसमें भी कुछ पद कवि की जीवनी के संबंध में मिलते हैं—

(१) गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रबीन।
सिव विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन ॥*

(२) श्रीबल्लभ गुरु तत्त्व सुनायौ लीला भेद बतायौ ॥ †

(३) ता दिन ते हरिलीला गाई एक लक्ष पद बन्द।
ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनन्द ॥ ‡

सूरदास के तीसरे ग्रन्थ साहित्यलहरी के दो कूट पदों से हमें सूर के सम्बन्ध में कई बातें ज्ञात होती हैं।
उनकी प्रथम पंक्तियाँ ये हैं —

(१) मुनि पुनि रसन के रस लेख। +

(२) प्रथम ही प्रथ जागते मे प्राग अद्भुत रूप। ×

---

§ चौरासी वैष्णवों की वार्ता, पृष्ठ २८८-८६ (गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास मुम्बई से, १६८५)

* सूरसारावली पद १००२

† ,, ,, १००२

‡ ,, ,, १००३

\+ साहित्यलहरी (सटीक, लहेरियासराय)

× श्री सूरदास का दृष्टिकूट सटीक (जिसका उत्तमोत्तम तिलक

आलोचना

उक्त पदों से सूरदास के जीवनचरित के संबंध में कितनी बातें ज्ञात होती हैं, यह प्रश्न तो आगे आवेगा ; यहाँ हमें पहले इनकी प्रामाणिकता पर विचार कर लेना है। 'सूरसागर' और 'सूरसारावली' से जो पद ऊपर दिये गये हैं, उनकी प्रामाणिकता के संबंध में विद्वानों को संदेह नहीं है। 'सूरसागर' का "भरोसो दृढ़ इन चरनन केरौ" और 'सूरसारावली' का "गुरु प्रसाद होत यह दरसन सरसठि बरस प्रबीन" वाले पद सूर के जीवनचरित-लेखकों के बड़े काम के रहे हैं। 'साहित्यलहरी' का "मुनि पुनि रसन के रस लेख" वाला पद भी इसी कोटि का है। परंतु इस ग्रंथ के दूसरे पद की प्रामाणिकता का विषय अभी तक विवादग्रस्त ही है। यद्यपि सेनापति-कृत 'सूर के दृष्टिकूट' नामक पुस्तक में यह पद पाया जाता है, तथापि "प्रबल दच्छिन बिप्रकुल तें शत्रु ह्व है नास" वाली पंक्ति को लेकर राधाकृष्ण-दास * और उनके पश्चात् मिश्रबंधुओं † आदि ने शिवाजी के प्रधान सहायक पेशवा के, जिन्होंने शत्रुओं अर्थात् मुसलमानों का नाश किया था, समय को इसका रचना-काल माना है। इस पक्ष के आलोचकों का कहना है कि दक्षिण के मैसूर राज्य में उस समय कृष्ण राजा नामक एक क्षत्रिय राज्य कर रहा था।

श्रीमहाराजाधिराज काशिराज श्रीमहीश्वरीप्रसादनारायण सिंहाज्ञानुसार श्री सरदार कवि ने किया है।) नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ (चौथी बार) सन् १९१२, पद ११०, पृष्ठ ७१-७२।

* सूरदास का जीवनचरित पृ० ४ (श्री सूरसागर—राधाकृष्णदास द्वारा संशोधित) खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई सं० १९८०

† हिंदी नवरत्न (महात्मा सूरदास) पृ० २३६ (चतुर्थ संस्करण)

उसके मंत्री अवश्य ब्राह्मण थे। परंतु उन्होंने ऐतिहासिक महत्त्व का कोई कार्य अपने समय में किया ही नहीं, शत्रुओं का नाश तो दूर की बात है। अतः विप्रकुल से 'पेशवा' की ओर ही संकेत किया गया जान पड़ता है। इसका आशय यह हुआ कि सूरदास के लगभग दो सौ वर्ष पश्चात् किसी अन्य कवि ने सूर नाम से इस पद की रचना करके इसे 'साहित्यलहरी' में मिला दिया होगा। आलोचकों का दूसरा दल उक्त पंक्ति के 'विप्रकुल' को लेकर भिन्न अर्थ निकालता है—यहाँ 'शत्रु' से तात्पर्य मुसलमानों से नहीं, वरन् आत्मिक शत्रुओं से है। इस प्रकार 'विप्रकुल' से संकेत दक्षिण के ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए बल्लभाचार्य से है, जिन्होंने अपने उपदेशों से आध्यात्मिक अज्ञान का नाश किया।‡

इस वर्ग के आलोचक उक्त पद को पूर्णतः अप्रामाणिक मानने को तैयार नहीं। वस्तुतः "भयो सातो नाम" वाली पंक्ति में 'सूरजचंद' के नाम के साथ "मन्द, निकाम" आदि दैन्य-प्रदर्शन-सम्बन्धी जो विशेषण मिलते हैं, उनसे यह सम्भव जान पड़ता है कि यह पद सूर का ही रचा हुआ हो। परन्तु इसके अंतिमांश में कुएँवाली जिस किंवदन्ती की ओर संकेत किया गया है, उसके कारण साहित्य के आलोचक विद्यार्थी को वर्णन की सत्यता पर सन्देह ही होता है। दूसरी बात यह कि इस पद में जो आत्मश्लाघा का संकेत मिलता है, वह भी भक्तप्रवर सूरदास की प्रकृति के प्रतिकूल ही जान पड़ता है। पद के अन्त में "विप्र प्रथ ते जाग को है भाव सूर निकाम" वाली पंक्ति से जान पड़ता है कि कवि 'ब्रह्मभट्ट' की पुनः व्याख्या-सी कर रहा है, जिससे कोई इस जाति को भूल न जाय। फिर भी हम दृढ़ता-

‡ सूर-संदर्भ—भूमिका—पृ० ३३

पूर्वक इस पद को अप्रामाणिक नहीं सिद्ध कर सकते। कारण यह है कि कवि के सम्बन्ध में जो बातें हमें 'साहित्यलहरी' के इस पद में मिलती हैं, वे 'सूरसागर' या 'सूरसारावली' से संकलित अन्तःसाक्ष्य के अन्तरित आनेवाले किसी अन्य पद में नहीं हैं, जिनसे इनकी सत्यता पर विचार किया जा सके। इस पद के अभी तक विवादग्रस्त बने रहने का यही कारण है। यदि इस पद को प्रामाणिक मान लिया जाय तो सूर के वंश-वृक्ष के सम्बन्ध में हमें अनेक ज्ञातव्य बातों का परिचय सरलता से मिल जायगा।

(२) बहिःसाक्ष्य

इस उपशीर्षक के अन्तर्गत आनेवाली सामग्री को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—

(क) *किंवदन्तियाँ*—महापुरुषों के जीवन-काल में ही उनके सम्बन्ध में अनेक किंवदन्तियाँ प्रचलित हो जाती हैं। तुलसी के सम्बन्ध में प्रचलित दंतकथाओं की संख्या तो पचास से भी ऊपर है, परन्तु सूरदास के सम्बन्ध में मुख्यतः तीन किंवदन्तियाँ ही प्रचलित हैं—

(१) विल्व-मंगल और वेश्यावाली, (२) सेठ की स्त्री पर मुग्ध होना, (३) कुएँ में गिरना। पहली के विषय में एक आलोचक महाशय लिखते * हैं, "यह कथा सूरदासजी के सम्बन्ध में इतनी प्रचलित है कि जिसको साहित्य से कोई सरोकार नहीं, वह भी इस कथा को कहता-सुनता है। यह जनश्रुति सर्वथा असत्य है, यह मानने में हृदय को हिचकिचाहट होती है।" हमारी समझ में किंवदन्तियों के सम्बन्ध में साहित्यिक दृष्टि से यह दलील बिलकुल लचर है। दूसरी जनश्रुति की सत्यता

* साहित्यलहरी सटीक, भूमिका पृष्ठ ४

की आलोचना करते हुए अन्यत्र कहा जा चुका है कि बहुत कुछ ऐसी ही कथाएँ अनेक साधुओं और महात्माओं के जीवन-चरित्र से सम्बद्ध कर दी गयी हैं। अतः इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। तीसरी दंतकथा भी प्रचलित तो बहुत है, परन्तु सत्य नहीं मानी जा सकती। कुएँ से बाहर निकलने पर मिलनेवाले चक्षुओं के सांकेतित आशय की आलोचना अन्यत्र की गई है।

(ख) *अन्य लेखकों के ग्रन्थ*—सूरदास के सम्बन्ध में दूसरे लेखकों ने जो विचार प्रकट किये हैं, उनको हम दो भागों में रख सकते हैं—

(१) *समकालीन लेखकों के विचार*—इस समय लगभग ६ ग्रंथ ऐसे मिलते हैं, जिनके लेखक सूरदास के प्रायः समकालीन थे। वे ग्रन्थ ये हैं—

(१) चौरासी वैष्णवों की वार्ता
(२) भक्तमाल
(३) मूल गोसाईंचरित
(४) आईने-अकबरी
(५) मुंशियात अबुलफजल
(६) मुन्तखिब-उल-तवारीख

इन छहों ग्रंथों में प्रथम तीन धार्मिक दृष्टि से रचे गये थे और अन्तिम तीन साधारण परिचय के उद्देश्य से। सूरदास के संबंध में इन ग्रंथों में केवल कुछ बातें मिलती हैं और इसका कारण यह है कि इनके लेखकों का उद्देश्य केवल सूर का जीवनचरित लिखना नहीं था। यहाँ हमें देखना है कि इन ग्रन्थों से सूर के सम्बन्ध में कितनी बातें ज्ञात होती हैं।

(१) *चौरासी वैष्णवों की वार्ता*—गोस्वामी बिट्ठलदासजी के

पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथजी की रची यह पुस्तक ब्रजभाषा में है। इसमें सूरदासजी के सम्बन्ध में ये बातें ज्ञात होती हैं—

(अ) *निवास-स्थान और परिचय*—गऊघाट ऊपर सूरदासजी को स्थल हुतो।......गान बहुत आछो करते ताते बहुत लोग सूरदासजी के सेवक भये हुते। *

(आ) *बल्लभाचार्य से भेंट, दीक्षा और सूरसागर-रचना की प्रेरणा*—तब सूरदासजी अपने स्थल ते श्री आचार्यजी महाप्रभून के दर्शन को आये।...तब श्री आचार्यजी महाप्रभून ने कह्यो—जो सूर कछु भगवद्‌यश वर्णन करो। तब सूरदासजी ने कही—जो आज्ञा।... सो सुनिके श्री आचार्यजी महाप्रभून ने कह्यो—जो सूर हैके ऐसो घिघियात काहे को है। कछु भगवल्लीला वर्णन करि। तब सूरदास ने कह्यो, जो महाराज हौं। तो समभ्रत नाहीं। तब श्रीआचार्यजी महाप्रभून ने कह्यो जा स्नान करि आउ, हम तोकों समभ्रावेंगे। तब सूरदासजी स्नान करि आये। तब श्रीमहाप्रभूनजी ने प्रथम सूरदासजी को नाम सुनायौ पाछें समर्पण करवायौ। तब सूरदासजी ने भगवल्लीला वर्णन करी।...सो जैसो श्रीआचार्य जी महाप्रभून ने मार्ग प्रकाश कियौ हौ ताके अनुसार सूरदासजी ने पद कीयै। †

(इ) *सूरसागर*—सूरदासजी ने सहस्रावधि पद कीये हैं। ताको सागर कहियै सो सब जगत् में प्रसिद्ध भयें ‡

---

* चौरासी वैष्णवों की वार्ता पृ० २७२

† ,, ,, ,, ,, २७४-७५

‡ ,, ,, ,, ,, २७६

(ई) *देशाधिपति से भेंट*—सूरदासजी के पद देशाधिपति ने सुने। सो सुनि के यह बिचारौ जो सूरदासजी काहू विधि सों मिले तो भलौ। सो भगवदिच्छा ते सूरदासजी मिले। सो सूरदासजी सो कह्यौ देशाधिपति ने जो सूरदासजी मैं सुन्यो है, जो तुमने विनय-पद बहुत कीये हैं। जो मोको परमेश्वर ने राज्य दीयौ है सो सब गुनीजन मेरौ जस गावत हैं ताते तुमहूँ कछु गावौ। तब सूरदासजी ने देशाधिपति के आगे कीर्तन गायौ। *

(उ) *सूर अन्धे थे*—और सूरदासजी ने या पद के समाप्त में गायौ। "हो जो सूर ऐसे दर्श कोई भरत लोचन प्यास।" यह गाया है। देशाधिपति ने पूछौ—जो सूरदासजी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाहीं सो प्यासे कैसे भरत है और बिन देखे तुम उपमा कौं देत है। सो कैसे देत हौ। तब सूरदासजी कछु बोले नाहीं। तब फेरि देशाधिपति बोलौ—जो इनके लोचन हैं सो तो परमेश्वर के पास हैं सो उहाँ देखत हैं सो वर्णन करत हैं। †

(ऊ) *मृत्यु-स्थान और महत्त्व*—अब सूरदासजी ने श्रीनाथजी की सेवा बहुत कीनी बहुत दिन ताईं। ता उपरान्त भगवदिच्छा जानी जो प्रभून की इच्छा बुलायबे की है। यह विचारि के जो परासोली है, तहाँ सूरदासजी आये। तब श्रीगुसाईंजी ने अपने सेवकन सों कह्यो जो पुष्टिमार्ग को जिहाज जात है। जाको कछू लेनो होय तौ लेउ। ‡

---

* चौरासी वैष्णवों की वार्ता पृ० २७६

† ,, ,, ,, ,, २८०-८१

‡ ,, ,, ,, ,, २८७

(ए) सूर की दृष्टि में गुरु—तब चतुर्भुजदास ने कह्यौ जो सूरदासजी ने बहुत भगवतजस वर्णन कीयौ पर श्रीआचार्यजी महाप्रभून का जस वर्णन ना कीयौ । तब यह वचन सुनि के सूरदासजी बोले जामें तो सब आचार्यजी महाप्रभून को ही जस वर्णन कीयौ है कछू न्यारौ देखूँ तो न्यारौ करूँ ।×

'चौरासी वार्ता' से अवतरित उक्त अंशों के रेखाङ्कित भाग देखकर कहना पड़ता है कि इस ग्रन्थ में सूरदासजी के जीवन के सम्बन्ध में पर्याप्त संकेत मिलते हैं । इसके रचयिता+गोकुलनाथजी का जन्म सन् १५५१ (सं० १६०८) में हुआ था । सूर उनके पिता विट्ठलदास के समकालीन थे । सूरदास की मृत्यु के समय उनकी अवस्था लगभग ४८ वर्ष की थी । गोकुलनाथ इनके द्वितीय पुत्र थे । अनुमान किया जाता है कि सूरदास की मृत्यु के समय गोकुलनाथ की अवस्था २०-२२ वर्ष की होगी । दूसरी बात यह कि अपने पिताजी सूर के सम्बन्ध में वे आवश्यक बातें जान भी सकते थे । यही कारण है कि उनके कथन की प्रामाणिकता पर किसी को अविश्वास नहीं हो सकता । यों भी यह ग्रन्थ साहित्य के इतिहासकारों द्वारा प्रामाणिक ही माना गया है । परन्तु इसके सम्बन्ध में इतना स्मरण रखना चाहिए कि धार्मिक दृष्टि से लिखे जाने के कारण इसमें किसी प्रकार

× चौरासी वैष्णवों की वार्ता पृ० २८८

+ इधर स्व० पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने अपना परिवर्तित मत यह दिया है कि यह ग्रंथ गोकुलनाथ के किसी शिष्य का लिखा हुआ जान पड़ता है ; क्योंकि इसमें गोकुलनाथ का कई जगह बड़े भक्तिभाव से उल्लेख है ।—"हिन्दी साहित्य का इतिहास" (संशोधित और परिवर्धित संस्करण, पृ० ४७६)

की तिथियों का उल्लेख नहीं है। अतः सूर का काल जानने के लिए हमें अन्य साक्ष्यों पर ही निर्भर रहना पड़ेगा।

(२) *भक्तमाल*—इस ग्रन्थ की रचना सन् १५८५ (सं० १६४२) के लगभग हुई थी। इसके रचयिता नाभादासजी थे। इस ग्रंथ में अनेक भक्तों का परिचय मिलता है और सबका वर्णन एक-एक छप्पय में ही किया गया है। सूरदासजी के सम्बन्ध में भी निम्नलिखित एक ही छप्पय है।

सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।
उक्ति, चोज, अनुप्रास, बरन अस्थिति अति भारी।
बचन प्रीति निर्दाह अर्थ अद्भुत तुक धारी॥
प्रतिबिंबित दिवि दृष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुनरूप सबै रसना परकासी॥
बिमल बुद्धि गुन और की, जो वह गुन श्रवननि धरै।
सूर कवित सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै॥*

इस छप्पय में सूर-काव्य की जो प्रशंसा की गयी है, उसके संबंध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। हाँ, नाभादासजी के भक्तमाल से कवि सूर के जीवनवृत्त के विषय में हमें कुछ नहीं ज्ञात होता। हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि सन् १५८५ (सं० १६४२) तक सूर के काव्य का पर्याप्त प्रचार हो चुका था और काव्यरसिक उसका महत्त्व समझने लगे थे।

(३) *मूल गोसाईं चरित*—इस ग्रंथ के रचयिता बाबा वेणीमाधवदासजी, जो गोस्वामी तुलसीदासजी के शिष्य थे और उन्हीं के साथ रहा करते थे, माने जाते हैं। इस ग्रंथ में सूरदास और तुलसीदासजी की भेंट के संबंध में नीचे लिखी पंक्तियाँ

---

* श्रीभक्तमाल (सटीक) पृ० ५३६-४०

मिलती हैं, जिनमें यह भी संकेत किया गया है कि कवि सूर ने अपना सूरसागर तुलसीदासजी को दिखलाया था—

सोरह सै सोरह लगे कामद गिरि ढिग वास।
सुचि एकान्त प्रदेश महँ आये सूर सुदास॥
कवि सूर दिखायउ सागर को,
सुचि प्रेमकथा नटनागर को॥ *

महात्मा सूरदास और तुलसीदासजी की भेंट के पक्ष में कई विद्वानों ने लिखा है; प्रमाण भी ऐसे मिलते हैं, जिनसे इस बात की पुष्टि ही होती है। परन्तु 'मूल गोसाईंचरित' की प्रामाणिकता अभी तक सर्वमान्य नहीं है। यदि यह निश्चित हो जाय कि इस ग्रंथ की उक्त पंक्तियाँ सत्य हैं, तो हम कह सकते हैं कि संवत् १६१६ (सन् १५६६) तक सूरदासजी सूरसागर समाप्त कर चुके थे और उस समय उनकी अवस्था इतनी अधिक नहीं थी कि वे सुदूर प्रदेशों की यात्रा न कर सकें।

(४) *आईने-अकबरी*—यह ग्रंथ अकबर के प्रधान मंत्री अबुलफजल ने लिखा था। इसके अनुसार सूर के पिता का नाम रामदास था, जो अकबर के प्रधान मंत्री बैरम खाँ खानखाना के आश्रय में रहते थे। अबुलफजल ने लिखा है कि पिता और पुत्र दोनों शाही दरबार में गवैये थे!† परन्तु इनकी नियुक्ति कब हुई, इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। अनुमान किया जाता है कि शाही दरबार में ये सं० १६१८ के बाद ही आये होंगे।

* मूल गोसाईंचरित, दोहा २६ और आगे की चौपाई।

† Badoni says, Ramadas came from Lucknow. He appears to have been with Bairam Khan during his rebellion, and he received once from him one lakh of Tankahas; empty as Bairam Khan's treasure chest

इस ग्रंथ की प्रामाणिकता का प्रश्न नहीं उठता। परन्तु इतना अवश्य अनिश्चित है कि जिन सूरदास का इसमें उल्लेख है, वे हमारे महाकवि ही हैं या अन्य कोई।

(५) *मुंशियात अबुलफजल*—उक्त ग्रंथ के लेखक ने इसमें अकबर के पत्रों का संकलन किया है। पुस्तक के अन्त में एक पत्र है, जो सूरदास नाम के किसी व्यक्ति को अकबर बादशाह की आज्ञा से अबुलफजल ने लिखा था। पत्र का कुछ अंश मुंशी देवीप्रसाद ने सूरदास के जीवनचरित ‡ में अनूदित करके इस प्रकार दिया है—

"हजरत बादशाह शीघ्र ही इलाहाबाद को पधारेंगे। आशा है कि आप भी सेवा में उपस्थित होकर सच्चे शिष्य होवें और ईश्वर को धन्यवाद दें कि हजरत भी आपको परम धर्मज्ञ जानकर मित्र मानते हैं और जब हजरत मित्र मानते हैं और तब इस दरगाह के चेलों और भक्तों का उत्तम बर्ताव मित्रता के अतिरिक्त और क्या होगा ? ईश्वर शीघ्र ही आपके दर्शन करावे, जिसमें हम भी आपकी सत्संगति और चित्ताकर्षक वचनों से लाभ उठावें।

यह सुनकर कि वहाँ का करोड़ी आपके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता, हजरत को भी बुरा लगा है और इस विषय में उनके नाम कोपमय फर्मान भी जा चुका है और इस तुच्छ शिष्य अबुलफजल

---

was. He was first at the court of Islam Shah and is looked upon as second only to Tansen. His son Surdas is mentioned below.

Ain--Akbari Vol-I- (*Translated by Blochman*) *page No. 612 n.*

‡ सूरदास का जीवन-चरित, पृ० ३०-३१

को भी आज्ञा हुई है कि आपको दो-चार अक्षर लिखे। वह करोड़ी यदि आपकी शिक्षा नहीं मानता हो, तो हम उसका काम उतार लें और जिसको आप उचित समझें, जो दीन-दुखी और सम्पूर्ण प्रजा की पूरी सम्हाल कर सके, उसका नाम लिख भेजें, तो अर्ज करके नियत करा दूँ। हजरत बादशाह आपको खुदा से जुदा नहीं समझते। इसलिए उस जगह के काम की व्यवस्था आपकी इच्छा पर छोड़ी हुई है। वहाँ ऐसा हाकिम चाहिए कि जो आपके अधीन रहे और जिस प्रकार से आप स्थिर करें, काम करे। आप से यही पूछना है, सत्य कहना और सत्य कहाना है। खत्रियों वगैरह में से जिस किसी को आप ठीक समझें कि वह ईश्वर को पहचानकर प्रजा का प्रतिपालन करेगा, उसी का नाम लिख भेजें, तो प्रार्थना करके भेजूँ। ईश्वर के भक्तों को ईश्वर-सम्बन्धी कामों में अज्ञानियों के तिरस्कार करने का संशय नहीं होता है। सो ईश्वर की कृपा से आपका शरीर ऐसा ही है। परमेश्वर आपको सत्कर्मों की श्रद्धा देवे और सत्कर्म के ऊपर स्थिर रक्खे।"

इस पत्र के लिखे जाने की तिथि 'मुन्शियात अबुलफजल' नामक ग्रंथ में नहीं दी हुई है। परन्तु पत्र में बादशाह के प्रयाग जाने की जो बात लिखी हुई है, उससे एक सूत्र मिल जाता है। संवत् १६४२ में वे एक बाँध बँधवाने के लिए वहाँ गये थे। इस सिलसिले में प्रयाग में उनका कुछ दिन रहना भी हुआ था। अतः यदि यह मान लिया जाय कि यह पत्र महात्मा सूरदासजी को ही अबुलफजल ने अकबर की आज्ञा से लिखवाया था, तो उनके जीवन के सम्बन्ध में दो बातें ज्ञात होती हैं। पहली बात तो यह है कि बादशाह अकबर से उनकी भेंट हुई थी और दूसरी यह कि सम्वत् १६४२ में वे जीवित अवश्य थे।

इस पत्र से ध्वनि निकलती है कि सूरदास ने अपने निवास-स्थान के करोड़ी द्वारा सताये जाने पर उसकी शिकायत बादशाह अकबर से की थी, जिसके उत्तर में उन्होंने उक्त पत्र अबुलफजल द्वारा लिखवाया। सूरदास-जैसे शान्तिप्रिय और एकान्तवासी व्यक्ति को उस शासक ने क्यों सताया होगा, समझ में नहीं आता। फिर संसार से उदासीन रहनेवाले सूर ने उसे दण्ड दिलाने का प्रयत्न किया होगा, स्वयं या किसी दूसरे से पत्र लिखाकर बादशाह से इसके लिए प्रार्थना की होगी, इसका भी विश्वास नहीं होता।

दूसरी बात यह कि यदि उक्त पत्र की बात सत्य मान ली जाय, तो संवत् १६४२ में सूरदास की अवस्था लगभग १०० वर्ष की होगी। अन्धे वे पहले ही हो चुके थे। ऐसी स्थिति में पहुँच-कर साधारण व्यक्ति भी संसार से विरक्त हो जाता है। महात्मा सूरदास तो इस समय से लगभग ५० वर्ष पूर्व पुष्टिमार्ग की दीक्षा ले चुके थे। परन्तु क्या उक्त पत्र से यह ध्वनि निकलती है कि वह सूरदास-जैसे वयोवृद्ध, निवृत्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए मरणासन्न व्यक्ति के पास भेजा गया था? हम तो समझते हैं कि उस पत्र का अधिकारी कोई ऐसा व्यक्ति है, जो पूर्ण वयस्क है और अपने निकटतम अधिकारी से रुष्ट होकर, उसका विरोध करके 'जल में रहकर मगर से वैर' करने को प्रस्तुत है। यही नहीं, उसको दण्ड दिलाने का उचित उपाय भी कर रहा है।

पत्र के अधिकारी व्यक्ति के लिए अबुलफजल ने 'धर्मज्ञ' विशेषण का प्रयोग किया है। कदाचित् इसी से हमारे साहित्य के इतिहास-लेखकों तथा सूर के जीवनचरित-लेखकों ने पत्र के अधिकारी सूरदास और हमारे महात्मा सूरदास को एक ही व्यक्ति समझ लिया है। डाक्टर रामकुमार वर्मा भी इस पत्र को प्रमाण

मानकर सूर का मृत्यु-संवत् १६४२ मानने को तैयार हैं।§ परन्तु हम उक्त कारणों से अभी सहमत नहीं कि 'मुंशियात अबुलफजल' में संकलित यह पत्र महात्मा सूरदास को ही लिखा गया था।

(?) *मुंतखिब-उल-तवारिख*—इस ग्रंथ में भी 'आईन-ए-अकबरी की तरह सूरदास के पिता का नाम रामदास बताया गया है, जिसका नाम अकबर के दरबारी गायकों में है। * इस कथन के संबंध में भी यही शंका है कि यह सूरदास कौन हैं। यदि ये हमारे महात्मा सूरदासजी ही हैं, तो अकबर से उनकी भेंट और उनका संवत् १६४२ तक जीवित रहना, दोनों बातें निश्चित हो जायँगी।

(२) *परवर्ती लेखकों के ग्रंथ*—ऊपर जिन ग्रंथों को लेकर सूर की जीवन-सामग्री का पता लगाया गया है, वे प्राय: कवि के समकालीन लेखकों द्वारा रचे गये थे। महात्मा सूरदासजी की मृत्यु के पश्चात् जब उनके भक्तों ने स्वयं कवि के अथवा उनके काव्य के विषय में लिखना चाहा, तब उन्होंने समकालीन लेखकों के ग्रंथों से पूर्ण सहायता ली। थोड़ी बहुत किंवदंतियाँ, जो उस समय तक प्रचलित हो गयी थीं, उनका भी इन लेखकों ने अपने ग्रंथों में समावेश कर लिया। अत: इन ग्रंथों से केवल इतना ही पता चल सकता है कि इनकी रचना के समय कवि और उसकी कृतियों के विषय में जनसाधारण विशेषत: उस व्यक्ति के क्या विचार थे। जिन परवर्ती ग्रंथों में सूरदास का उल्लेख मिलता है, वे चार हैं—

(१) भक्तविनोद (२) रामरसिकावली
(३) शिवसिंहसरोज (४) भारतेंदुजी का लेख

§ हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ६१४
*Muntakhab-ul-Tavarikh-Vol-II page 37.

इन चार ग्रंथों में प्रथम दो प्राचीन शैली में भक्तों की दृष्टि से लिखे गये थे और इनका आधार समकालीन लेखकों के प्रथम तीन ग्रंथ तथा दंतकथाएँ ही मुख्यत: हैं। तीसरा ग्रंथ संकलनमात्र है। चौथा ग्रंथ प्राचीन लेख के रूप में भारतेंदु हरिश्चंद के पास बताया जाता था। † वह क्या था, कैसा था, कुछ पता नहीं लगता। अत: हम केवल प्रथम तीन में सूरदास के जीवन-चरित के संबंध में मिलनेवाली सामग्री का ही उल्लेख यहाँ करेंगे—

(१) *भक्तविनोद*—यह ग्रंथ मियाँ सिंह का लिखा बताया जाता है। परंतु इसकी रचना कब हुई, इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। इस ग्रंथ में सूरदासजी के संबंध में प्रचलित किंवदंतियाँ वर्तमान हैं। उनको इसमें ब्राह्मण-वंश का बताया गया है। संभव है, इसका कारण भी जनश्रुति ही हो।

(२) *रामरसिकावली*—इस ग्रंथ की रचना महाराज रघुराज सिंह ने की थी। तुलसीदास के जीवन-चरित के साथ-साथ इसमें सूरदास के संबध में भी कुछ बातें दी हुई हैं। "जनमहिते हैं नैनबिहीना" वाली पंक्ति इसी ग्रंथ की है। परंतु सूरदास के जीवन-चरित की सामग्री के लिए हमें इस ग्रंथ से विशेष सहायता नहीं मिलती। कारण यह है कि यह ग्रंथ नाभादासजी के 'भक्तमाल' के आधार पर लिखा गया था। यही नहीं, नाभादासजी के शिष्य प्रियादासजी की 'भक्तिरसबोधिनी' नाम की 'भक्तमाल' की टीका से भी इसकी रचना में सहायता ली गयी थी। अत: इस ग्रंथ का महत्व उसी के अन्तर्गत समझा जाना चाहिए।

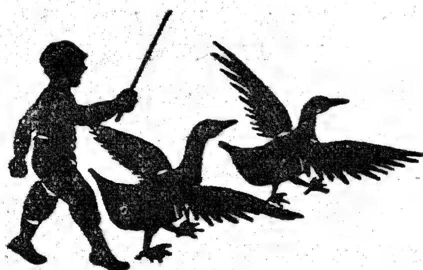
(३) *शिवसिंहसरोज*—'सरोज' के कर्त्ता श्रीशिवसिंहजी सेंगर थे। ये उन्नाव के निवासी थे। इन्होंने हिंदी के कई कवियों

---

† साहित्यलहरी (सटीक) प्रथम संस्करण, भूमिका पृ० २

के ग्रन्थों के नाम और संक्षिप्त परिचय 'सरोज' में दिये हैं। सूरदासजी का समय, उनके ग्रन्थों के नाम और उनका थोड़ा परिचय भी हमें इस ग्रन्थ में मिलता है। इस संबंध में 'सरोज' का महत्व यही है कि उसके रचयिता के समय तक जो बातें जिस रूप में प्रचलित थीं, वे हमें मिल जाती हैं।

सारांश यह कि सूर के जीवनचरित के संबंध में जो सामग्री उपलब्ध है, वह पर्याप्त नहीं कही जा सकती। उसके आधार पर कवि का जो जीवनचरित तैयार किया जा सकता है, उसकी रूप-रेखा हम आगे दे रहे हैं।



जीवन-चरित्र

महात्मा सूरदास के जीवन-चरित्र की सामग्री के विषय में जो कुछ ऊपर लिखा गया है, उससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि उनके जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातें विवाद-ग्रस्त ही हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि किसी भी एक ग्रंथ में वर्णित बातों की पुष्टि दूसरे प्रामाणिक ग्रंथ से नहीं होती। विवेचना और अन्वेषण के द्वारा हमारे इतिहासलेखकों ने विवाद-ग्रस्त बातों में से सत्य के अनुसंधान का प्रयत्न किया है। फिर भी उनमें मतभेद बना हुआ है। यहाँ विभिन्न मतों की विस्तारपूर्वक आलोचना करके पूर्ण प्रसंग स्पष्ट कर दिया गया है और निष्कर्ष रूप में कुछ संकेत भी दिये गये हैं। साहित्य के विद्यार्थी विषय को हृदयंगम करके उसकी यथार्थता की परीक्षा करने में समर्थ हो सकें, नीचे इसी के लिए प्रयत्न किया जाता है।

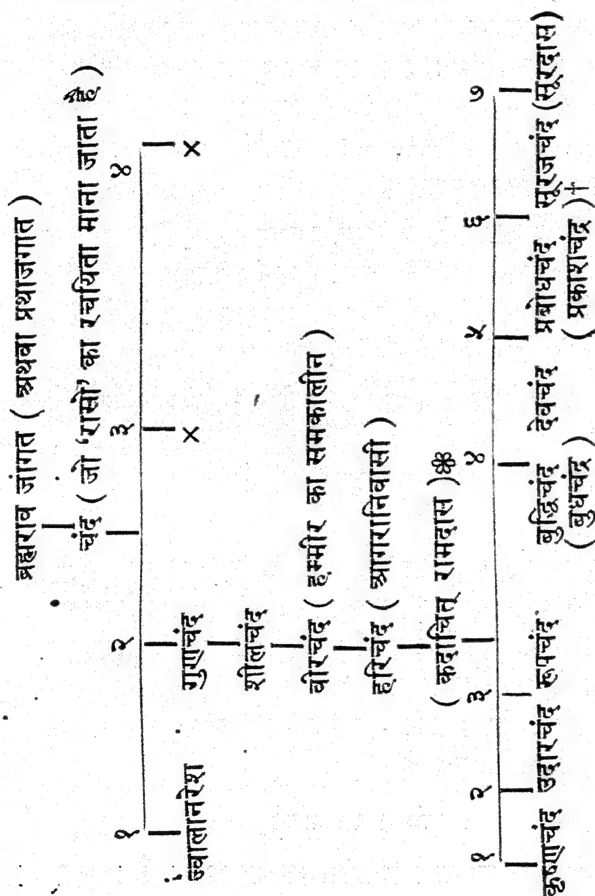
(क) साधारण परिचय

महात्मा सूरदास कृष्णकाव्य-धारा के सर्वप्रधान कवि हैं। अष्टछाप के कवियों में भी वे सर्वोपरि माने जाते हैं।। हिन्दी-साहित्य में उनके काव्य का सम्मान पिछले तीन सौ वर्षों में दिन-दिन बढ़ता रहा है। उनके प्रेमियों ने काव्य-जीवन से ही संतुष्ट न होकर उनके लौकिक जीवन के विषय में भी बहुत कुछ खोज की है। यहाँ संक्षेप में उनका लौकिक जीवन-चरित्र ही प्रस्तुत किया जाता है।

(ख) वंश-परिचय

महात्मा सूरदास के वंश के सम्बन्ध में भी दो अनिश्चित मत प्रचलित हैं—पहला सूरदास कविकृत 'सूरदास के दृष्टिकूट' नामक पुस्तिका के एक पद के आधार पर बताया जाता है कि

'पार्थंजगोत्रीय जागत वंश' का ब्रह्मराव नामक व्यक्ति सूरदास का पूर्वपुरुष था। यही पद 'साहित्यलहरी' में भी पाया जाता है और उससे इस पुस्तक में उद्धृत किया गया है। इस पद में सूरदास का वह वंश-वृक्ष मिलता है—



* उक्त पद के अनुसार तो यहाँ कोई नाम निश्चित नहीं दिया जा सकता; पर कुछ आलोचकों ने रामदास को सूरदास का पिता माना है।

† बाबू राधाकृष्णदास ने यहाँ संस्तचंद नाम दिया है। डा० जनार्दन मिश्र ने इसे स्वीकार किया है।

इस वंशलता में सूरदास को पृथ्वीराज के दरबारी कवि चंदबरदाई का वंशज और भाट बताया गया है। यह सन् १९२९ की 'सरस्वती' के किसी अंक में प्रकाशित सूर की दूसरी वंशलता से मिल जाती है। पिछली की प्रतिलिपि 'सरस्वती' में श्रीनानूराम ब्रह्मभट्ट ने प्रकाशित करायी थी, जो अपने को चंदबरदाई का वंशज मानते हैं। इनके अनुसार सूरदास चंद से छठे पुरुष थे। यथा—(१) चंद, (२) मल्लचंद, (३) सीताचंद, (४) वीरचंद, (५) हरिचंद, (६) रामचंद्र और रामचंद्र के ६ पुत्रों में सबसे छोटे सूरदास।

इन दोनों वंशलताओं में मुख्य अन्तर यह है कि पहली में चंदबरदाई के द्वितीय पुत्र का नाम गुणचंद्र बताया गया है; पर दूसरी में मल्लचंद। इसके अनुसार सूरदास गुणचंद के वंश में नहीं, मल्लचंद के वंश में जन्मे थे।

इस वंशलता को सत्य मानने में सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि चंद और सूरदास के समय में लगभग ३०० वर्ष का व्यवधान है। इतने समय में केवल ६ पुरुषों का होना असम्भव ही प्रतीत होता है।

दूसरे पक्षवालों का मत यह है कि सूरदास भाट नहीं, सारस्वत ब्राह्मण थे। गोस्वामी गोकुलनाथ की 'चौरासी वार्ता' और मियाँ सिंह के 'भक्तविनोद' में भी सूरदास को ब्राह्मण ही बताया गया है। नाभादास के 'भक्तमाल' के अनुसार भी वे ब्राह्मण ही ठहरते हैं। इस सम्बन्ध में 'वार्ता' का कथन प्रामाणिक माना जा सकता है।

(ग) पिता का नाम

सूरदास के पिता का नाम रामदास बताया जाता है। कुछ

आलोचकों ने इनका नाम रामचंद्र भी बताया है।* परन्तु इसका समर्थन कहीं से नहीं होता। 'रामदास' को पिता मानने की बात सबसे पहले बाबू राधाकृष्णदास ने वेंकटेश्वर प्रेस से प्रकाशित सूरसागर की प्रस्तावना में लिखी थी। इस बात का समर्थन इतिहास के प्रसिद्ध विद्वान् उदयपुर-राज्य के मुंशी देवी प्रसाद ने अपनी 'हालात हयात बाबा सूरदास' नामक पुस्तक में किया है। मुंशीजी ने यह बात कदाचित् 'आईने अकबरी' में दिये हुए बदाऊँनी † के कथन के आधार पर लिखी थी। इस ग्रंथ में एक-आध और स्थान पर भी सूरदास और रामदास का नाम आता है, परन्तु इन्होंने उसे लखनऊ का निवासी कहा है। एक स्थान पर गवैयों की सूची में भी सूरदास को बाबा रामदास का लड़का लिखा गया है। अबुलफजल ने भी रामदास का नाम लिखा है और उसे ग्वालियर का निवासी बताया है। परंतु अभी तक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अबुलफजल और बदाऊँनी के ग्रंथों में रामदास के पुत्र की हैसियत से जिस सूरदास का नाम आया है, वे भक्तशिरोमणि सूरदास ही हैं। यह संभव है कि इन्होंने जिसे रामदास का पुत्र सूरदास माना है, वह मदनमोहन सूरदास हो। भक्तमाल के १२६ के छप्पय में इनका परिचय दिया गया है और इसकी टीका गाते हुए प्रियादास ने मदनमोहन को अकबर का प्रिय कवि माना भी है। सम्राट् ने इन्हें सँडीले का अधिकारी बनाया था। इस प्रकार

---

* सूरसाहित्य की भूमिका पृष्ठ ४ (फुट नोट)

† Badoni says, Ram Das came from Lucknow. * * * His son Sur Das is mentioned below. *Ain-i-Akbari* Vol. I. Page No 612n. Tanstated by Blockmann (1873).

दरबार से संबंधित रहनेवाले मदनमोहन से अबुलफजल और बदाऊँनी, दोनों परिचित रहे होंगे। 'शिवसिंहसरोज' में भी सूरदास के पिता का नाम बाबा रामदास ही बताया गया है। परन्तु इस ग्रंथ में सूर का जन्म सं० १६४० और पिता का जन्म संवत् १७८८ लिखा गया है *। पुत्र के जन्म के बाद यहाँ पिता का जन्म होना बताया गया है। इस भूल के कारण विद्वानों को सरोजकार के इस कथन पर भी विश्वास नहीं होता कि महात्मा सूरदास बाबा रामदास के पुत्र थे। 'साहित्यलहरी' के सूर के वंशवाले पद को लेकर डाक्टर ग्रियर्सन ने सूरदास के पिता का नाम रामचंद्र माना है। उस पद में सूर के पिता के नाम का स्थान रिक्त है। डाक्टर साहब ने किस प्रमाण के आधार पर उसकी पूर्ति की थी, कहा नहीं जा सकता।

(घ) सूरदास का जन्म-स्थान

अन्य बातों की तरह ही सूरदास के जन्म-स्थानों के विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। इस संबंध में आलोचकों के दो दल हैं। पहले दल का मत है कि सूरदास का जन्म-स्थान दिल्ली के निकट साही (सीही) ग्राम है। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और 'भक्तमाल' के अनुसार भी यही स्थान ठीक जान पड़ता है। परन्तु 'चौरासी वार्ता' की टीका के आधार पर दूसरे दल का कहना है कि सूरदास का जन्म आगरा और मथुरा के बीच रुनकता (रेणुकाक्षेत्र) नामक ग्राम में हुआ था। यह स्थान † आगरे से ११ मील दूर जी० आई० पी० रेलवे स्टेशन से लगभग १ कोस के अंतर पर है। प्रसिद्ध है कि यहीं सूरदासजी का

* डा० जनार्दन मिश्र का सूरदास, पृष्ठ ४

† विशाल भारत व० ३, खं० १, सं० २, पृष्ठ २३२

जन्म हुआ था और यहीं वे रहते भी थे। उनके जन्म-स्थान का नाम यहाँ 'रेणुका' और निवास-स्थान का 'गऊघाट' प्रसिद्ध है। दोनों पास-पास ही जमुना नदी के किनारे हैं। यहाँ एक टूटी-फूटी कुटी पड़ी है, जिसमें श्रीराम-नाम अंकित एक पत्थर लगा हुआ है। यही कोठरी सूरदास की बतायी जाती है।

निश्चित रूप से इन स्थानों के संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता; परन्तु हमें प्रथम स्थान अपेक्षाकृत ठीक जान पड़ता है। 'चौरासी वार्ता' में सूरदास के प्रौढ़ावस्था का निवास-स्थान गऊघाट माना गया है*। हमारा अनुमान है कि यही पढ़कर 'वार्ता' के टीकाकार ने उनका जन्म-स्थान भी गऊघाट ही मान लिया है। एक अन्य आलोचक † का मत है—'सूर की व्रजभाषा का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका जन्म व्रज-प्रदेश में हुआ होगा।' 'भक्तमाल' के अनुसार जब सूरदास बाल्यावस्था में ही व्रज में आकर रहने लगे थे, तब केवल भाषा के आधार पर उनका जन्म-स्थान भी इसी प्रदेश को मान लेने के पक्ष में नहीं हैं।

(ङ) सूर का जन्म-संवत्

सूरदास का जन्म किस संवत् में हुआ, इस संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमान है कि वे संवत् १५४० (सन् १४८४) के लगभग पैदा हुए होंगे। इसके दो आधार हैं। पहली बात तो यह है कि सूरदासजी गोस्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे। अतः वे अवस्था में इनसे अवश्य ही छोटे रहे होंगे। भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ने गोस्वामीजी का जन्म सं०

---

* 'सो गऊघाट और मथुरा के बीचोबीच है'

† सूर-साहित्य की भूमिका पृष्ठ १८

१५३५ माना है * । इसलिए सूरदास का जन्म इस संवत् के बाद ही हुआ होगा । दूसरा आधार 'सूरसारावली' नामक ग्रंथ में दिया हुआ कवि का यह कथन है—

गुरु-प्रसाद होत यह दरसनु सरसठि बरस प्रवीन ।
शिव-विधान तप करेउ बहुत दिन तऊ पार नहिं लीन ॥†

इससे पता चलता है कि 'सूरसारावली' की रचना करते समय कवि की अवस्था ६७ वर्ष की थी । इस ग्रंथ में, जैसा नाम से स्पष्ट होता है, कवि ने 'सूरसागर' के पदों का ही सार-रूप संकलन किया है । यह कार्य 'सूरसागर' की रचना के पश्चात् ही हुआ होगा । इस विषय में मतभेद नहीं हो सकता ।

'सूरसारावली' का रचनाकाल तो हमें नहीं ज्ञात है, परन्तु अपने तीसरे प्रन्थ 'साहित्यलहरी' का रचना-काल कवि ने दिया है ; जिसपर से हमें इसका पता चलता है, वह इस प्रकार है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख ।
दसन गौरीनन्द को लिखि सुबल संवत पेख ॥
नन्दनन्दन मास छै ते हीन तृतीया वार ।
नन्दनन्दन जनम ते है बाण सुख आगार ॥
तृतीय ऋक्ष सुकर्म जोग बिचारि सूर नवीन ।
नन्दनन्दन दास हित साहित्यलहरी कीन ॥ ‡

---

* भारतेंदु-कृत चरितावली पृ० ६१

† छं० नं० १००२

‡ साहित्यलहरी । बाँकीपुर । १८६२ । पद १०६ । पृष्ठ १०१-२ ।

इस पद में मुनि=७ रसन=रसहीन=शून्य=० रस=६ दसन गौरीनन्द=१ से आशय यह है कि 'साहित्यलहरी' की रचना सं० १६०७ में की गयी। आगे मास और नक्षत्र का परिचय दिया गया है—नन्दनन्दन मास=वैशाख। छै ते हीन तृतीया=अक्षयतृतीया। तृतीया ऋक्ष= कृत्तिका नक्षत्र। सुकर्म जोग=योग विशेष का नाम।

इस 'साहित्यलहरी' नामक ग्रंथ में 'सूरसागर' के दृष्ट-कूटों और कूटपदों का संग्रह है। 'सूरसारावली' के समान इस ग्रंथ की रचना देखकर अनुमान किया जाने लगा है कि यह भी 'सारावली' के साथ-साथ और 'सूरसागर' की रचना के पश्चात् ही रचा गया होगा। कुछ आलोचकों का अनुमान है कि 'सूरसारावली' की रचना पहले हुई थी और 'साहित्यलहरी' की उसके बाद। परन्तु इसका प्रमाण क्या है, यह स्पष्ट नहीं किया जाता। यह भी हो सकता है कि दोनों रचनाओं का क्रम उलटा हो अथवा दोनों एक ही साथ लिखी गयी हों। जो हो, दोनों ग्रन्थों की प्रवृत्ति देखते हुए यह कहा जा सकता है और अनेक विद्वान् इससे सहमत भी हैं कि दोनों ग्रन्थों के रचनाकाल में बहुत अधिक अन्तर नहीं हो सकता और दोनों ही 'सूरसागर' के समाप्त हो जाने के पश्चात् ही संकलित किये गये होंगे। 'सूरसागर' लिखते समय कवि की अवस्था ६० वर्ष के लगभग बतायी जाती है। सम्भव है, इस समय तक वे उसका अधिकांश समाप्त कर चुके हों। तभी 'सूर-सारावली' की रचना उन्होंने ६७ वर्ष की अवस्था में की। 'साहित्यलहरी' को इसी के साथ की रचना मान लेने पर संवत् १६०७ ही 'सारावली' का रचनाकाल माना जाता है।

इस संवत् में से ६७ वर्ष घटा देने पर हमें सूरदास का जन्म-संवत् १५४० (सन् १४८४) ज्ञात होता है। ऊपर 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' को एक ही समय का मान लिया गया है। अतः यह संवत् पूर्ण रूप से सत्य तो नहीं है, परन्तु यह निश्चित है कि इसी संवत् के लगभग ही सूरदास का जन्म हुआ होगा। 'लगभग' से आशय केवल उतने ही समय के अन्तर से है, जितना 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' के रचनाकाल में होगा। हिंदी-साहिय के इतिहास-लेखकों में प्रायः सभी ने इस संवत् को स्वीकार कर लिया है। यह संवत् इस दृष्टि से भी सत्य जान पड़ता है कि यह आचार्य वल्लभाचार्य के जन्म-संवत् १५३५ के बाद ही हिसाब से आता है। यदि हम निश्चित रूप से यह मान लें कि सूरदास उनके शिष्य थे और उनसे अवस्था में छोटे थे, तो यह भी हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि 'सूरसारा-वली' और 'साहित्यलहरी' की रचना में पाँच वर्ष से अधिक का अन्तर नहीं हो सकता।

कुछ महाशयों का अनुमान है कि सूरदास का जन्म चैतन्य महाप्रभु के जन्म से एक वर्ष पहले हुआ था। इस कथन की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं मिलता; फिर भी हम यदि इसे सत्य मान लें, तो सूर का जन्म्-संवत् १५४० में ही हुआ होगा; क्योंकि महाप्रभु का जन्म सन् १४८५ (संवत् १५४१) में हुआ था।

(च) सूर का जीवन-वृत्तान्त

'भक्तमाल' के अनुसार सूर का उपनयन-संस्कार लगभग ८ वर्ष की अवस्था में हुआ था। इसके कुछ दिन पश्चात् उनकें माता-पिता ने मथुरा-यात्रा की। कुछ समय तक वहाँ रहकर जब वे लौटने को हुए, तब पुत्र ने उनके साथ घर जाना अस्वीकार कर दिया। पहले तो माता-पिता ने उन्हें बहुत समझाया, परन्तु इन्हें अपने

निश्चय पर दृढ़ देखकर बाद में बहुत दुखी होकर उन्होंने पूछा—"यहाँ एकांत प्रदेश में तुम्हें किसके सहारे छोड़ जायँ ?" श्रीकृष्ण की भक्ति में रँगे बालक ने तत्काल उत्तर दिया—"भगवान कृष्ण के।" माता-पिता के वात्सल्यमय हृदय को इस उत्तर से संतोष न हुआ। अन्त में एक साधु ने आकर उन दोनों को समझा-बुझाकर अकेले ही घर लौटने को तैयार कर लिया और बालक सूर को अपने साथ रखने का वचन दिया। दुखी हृदय माता-पिता बालक का हठ देखकर उसे साधु की संरक्षकता में छोड़ घर लौट गये। इस कथा को कल्पित मानकर यह भी कहा जा सकता है कि अपनी बाल्यावस्था में ही वे किसी प्रकार माता-पिता से अलग होकर ब्रजप्रदेश में आकर साधु-संतों के पास रहने लगे।

'चौरासी वार्ता' के अनुसार मथुरा में कुछ दिन रहने के पश्चात् सूरदासजी मथुरा और आगरा के बीच में गोघाट (गऊघाट) नामक स्थान में जाकर रहने लगे। इस समय वे विनय के पद बनाकर गाया करते थे और उनकी कीर्ति चारों ओर फैल रही थी। भगवद्भक्तों में बड़े आदर के साथ उनका नाम लिया जाता था और उन्होंने अपने कई शिष्य भी बना लिये थे। सं० १५७६ के लगभग महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के दर्शन उन्हें यहीं हुए और यहीं उन्होंने पुष्टिमार्ग की दीक्षा लेकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। गोघाट से वे अपने गुरु के साथ गोकुल के श्रीनाथजी के मंदिर में गये। अपने जीवन का शेषांश उन्होंने गोकुल में ही बिताया। धीरे-धीरे इनकी ख्याति सुदूर प्रदेशों में हो गयी। बड़े-बड़े साधु-महात्मा सत्संग-लाभ की आशा से इनके पास आने लगे। महात्मा सूरदास नित्य नये भजन बनाकर सबको संतुष्ट करते और भगवत-चर्चा में लगे रहते।

जीवन के अन्तिम वर्ष तक यही क्रम चलता रहा। लगभग ७० वर्ष की अवस्था तक ('सूरसारावली' ६७ वर्ष की अवस्था में संकलित मानकर) उन्होंने अपना रचना-कार्य बहुत कुछ समाप्त कर लिया था। इस समय तक वे अशक्त और कदाचित् नेत्रहीन हो चुके थे। कुछ वर्ष पश्चात् इन्होंने गऊघाट को छोड़ दिया और वारसोली गाँव में आकर रहने लगे। 'चौरासी वार्ता' के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी बिट्ठलनाथ के सामने यहीं उनकी मृत्यु हुई।

(छ) सूर के गुरु

'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार सूरदासजी को महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने पुष्टिमार्ग की दीक्षा दी थी। इस कथन की पुष्टि, जैसे लिखा जा चुका है, अन्तर्साक्ष्य से भी होती है। सूरदास इनके शिष्य क्यों बने, का कारण इस ग्रंथ में सूर की धर्म-पुराण-विषयक वह अनभिज्ञता थी, जो उन्होंने स्वयं स्वीकार की। अपने मत में दीक्षित करने के उपरांत महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उन्हें श्रीमद्भागवत का रहस्य समझाया और कृष्णचरित का गान करने की आज्ञा दी। महात्मा सूरदास ने अपने गुरु की आज्ञा शिरोधार्य की और अपने जीवन भर भगवान कृष्ण के चरित्र का गान किया। दीक्षा देने के कुछ समय पश्चात् वल्लभाचार्यजी के अन्यत्र चले जाने और फिर उनकी मृत्यु हो जाने के कारण सूरदास को अपने गुरु के सैद्धांतिक विचारों का भली भाँति अध्ययन करने का पूर्ण अवसर नहीं मिला। महाप्रभु वल्लभाचाय और महात्मा सूरदास के सिद्धांतों में जो थोड़ा-बहुत अन्तर दिखाई देता है, उसका यही कारण है।

अपने गुरुवर का सूरदासजी हृदय से सम्मान तो अवश्य करते थे, परन्तु उन्होंने गुरु को वह महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं

दिया—कम-से-कम उनके काव्य में कोई ऐसा पद नहीं मिलता—जैसा कबीर अथवा तुलसीदास के काव्य में मिलता है। जीवन के अन्तिम दिनों में चतुर्भुजदास ने उन्हें इस बात का स्मरण भी कराया; तब उन्होंने यह कहकर सबका समाधान कर दिया कि मैं ईश्वर और गुरु में कोई अन्तर नहीं समझता और अपने समस्त पदों में मैंने ईश्वर का गुणगान किया है। अन्त में समीपस्थ व्यक्तियों का विशेष आग्रह देखकर उन्होंने यह पद गाया—

भरोसो दृढ़ इन चरनन केरो।
श्रीवल्लभ-नख-चंद्र-छटा बिनु सब जग माँझ अँधेरो।
साधन और नहीं या कलि में जासो होत निबेरो॥
सूर कहा कहि दुबिध आँधरो बिना मोल को चेरो॥

सूर-काव्य में महाप्रभु वल्लभाचार्य की प्रशंसा में ऐसे अनेक पद भले ही न मिलें; परन्तु हमें इस एक ही पद से गुरु के प्रति सूरदास के भाव स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं।

(ज) अकबर से भेंट

अकबर के दरबारी कवियों का नाम गिनाने के लिए एक पद प्रायः दिया जाता है। वह इस प्रकार है—

पाइ प्रसिद्धि पुरंदर ब्रह्म सुधारस अमृत अमृत बानी।
गोकुल, गोप, गोपाल, गनेस, गुनी सुन सागर गंग सुज्ञानी॥
जोध जगन्नथ मे जगदीस जगायन जैत जगत्त है जानी।
को न अकब्बर सैन कथीं इतनै मिलिकै कविता जु बखानी॥

इन पंक्तियों में सूरदास का नाम नहीं आता। इसलिए सूर को अकबर का दरबारी कवि नहीं कह सकते। दूसरी बात यह कि इनमें रहीम, बीरबल आदि प्रसिद्ध कवियों के नाम भी नहीं

हैं। अतः इसके आधार पर सूर-अकबर की भेंट का प्रश्न हल नहीं हो सकता। 'चौरासी वार्ता' में सम्राट् अकबर से महात्मा सूरदास की भेंट का उल्लेख मिलता है। कदाचित् इसी से सूरदास के प्रायः सभी जीवन-चरित्र-लेखक इस बात में एक मत हैं कि उनकी अकबर से भेंट हुई थी। 'वार्ता' में इस भेंट का जो वर्णन किया गया है, उसमें इस बात का स्पष्ट आभास है कि लेखक वल्लभ-सम्प्रदाय की महत्ता बढ़ाने के लिए भी प्रयत्नशील था। सम्राट् का विनती करना, सूर का निडर होकर उसकी प्रार्थना की उपेक्षा कर देना, इसी ओर संकेत करते हैं। इस प्रकार के वर्णन अतिरंजित तो होते ही हैं, कभी-कभी कल्पित भी होते हैं। कदाचित् हमारे आलोचकों ने इस बात पर अधिक ध्यान न देकर ही उक्त कथन स्वीकार कर लिया है। परन्तु भेंट के काल और स्थान के विषय में अभी तक मतभेद बना हुआ है। काल-निर्णय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सूर के सम-कालीन लेखकों के ग्रंथों में तिथि का नितांत अभाव है। हाँ, स्थान का निर्देश प्रायः सभी ग्रंथों में अवश्य है। इसी के सहारे काल का थोड़ा-बहुत पता भी लग सकता था। परन्तु, स्थान के विषय में मतभेद होने से सूर के जीवन-चरित-लेखकों को एक निर्णय पर पहुँचने में कठिनाई होती है। सीकरी, मथुरा, दिल्ली और प्रयाग, तीन ऐसे मुख्य स्थान हैं, जहाँ सूर की अकबर से भेंट हुई बतायी जाती है। यहाँ हमें महात्मा सूरदास और सम्राट् अकबर की भेंट के स्थान और काल के विषय में ही विचार करना है।

(i) स्थान-निर्णय

गोस्वामी गोकुलनाथजी के अनुसार सम्राट् अकबर ने सूरदास की संगीत-पटुता की प्रशंसा सुनकर मथुरा-शासक के द्वारा आज्ञा

भेजी कि सूर को सीकरी के दरबार में भेजो । शासक ने इनके पास जाकर सम्राट् की आज्ञा सुनायी। परन्तु सूर ने वहाँ जाने से साफ इनकार कर दिया । इसपर मथुरा-शासक ने नगर के प्रतिष्ठित सज्जनों से कहा कि आप समझा-बुझाकर इन्हें सम्राट् के पास भेज दें ; अन्यथा या तो यहाँ से मेरी बदली कर दी जायगी या मैं निकाल ही दिया जाऊँगा। ऐसी दशा में मेरा स्थानापन्न शासक न जाने आपके साथ कैसा व्यवहार करे। बात लोगों की समझ में आ गयी। उन्होंने सूर से सम्राट् के पास जाने का निवेदन किया। सम्राट् अकबर उस समय संतान की कामना से शेख सलीम चिश्ती की आज्ञा के अनुसार सीकरी में रहता था। जब सूरदासजी सीकरी पहुँचे, तब अकबर ने उनका बड़ा सत्कार किया और गाना सुनाने को कहा। सूर ने गाया—

सीकरी में कहा भगत को काम।
आवत जात पन्हैया फाटी भूलि गयौ हरिनाम।
जाको मुख देखे है पातक ताहि कर्‌यौ परनाम।
फेर कबौं ऐसो जनि करियो सूरदास के स्याम। *

यह पद सुनकर अकबर के किसी सभासद (कदाचित् अबुलफजल) ने इनसे कहा कि महाराज, सम्राट् भी तो ईश्वर का ही अंश होता है। इसलिये आप सम्राट् के लिए भी एक-आध पद बनावें।

हम समझते हैं कि यह पद और कथन यदि ठीक है, तो क्षुब्ध सूरदास को शांत करने के लिए ही किसी ने अकबर को ईश्वर का अंश बताया होगा। जो हो, कहा जाता है कि यह बात सुनकर सूर ने ये दो पद सुनाये—

* सूरमुक्तावली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १७

(१) मन रे, माधव सों करि प्रीत ।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह तू छाँड़ि सबै बिपरीत ॥†

(२) नाहिन रह्यौ मन में ठौर ।
नन्द-नन्दन अछत कैसे आनिये उर और ॥

'हालात हयात बाबा सूरदास' के लेखक मुंशी देवीप्रसादजी ने भी उक्त मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि सूरदासजी अकबर से मिलने फतहपुर सीकरी गये । जोधपुर के कविराज मुरारिदान भी इस बात से सहमत हैं। उनका कहना है कि सूर का गाना सुनकर प्रसन्न होकर अकबर ने उन्हें 'एक सदी' मनसब दिया। सच्चे साधु सूर ने पहले तो यह स्वीकार न किया परन्तु बाद में सम्राट् के विशेष आग्रह से उनका मन रखने के लिए उसे स्वीकार करके वे अपने स्थान को लौट गये।

यह तो हुई सीकरी में भेंट की बात। मथुरा में सूरदास की अकबर से भेंट होना 'चौरासी वार्ता' के टीकाकार हरिराम ने लिखा है। सूरदास उस समय भी रहते तो गोवर्द्धन के श्रीनाथजी के मन्दिर में ही थे, परन्तु किसी कार्यवश मथुरा गये हुए थे। अकबर उस समय दिल्ली से आगरे जा रहा था। मार्ग में सूरदास की प्रशंसा सुनकर उनसे भेंट करना चाहा । इस प्रकार दोनों की मथुरा में भेंट हुई और सूरदास के पद तानसेन ने गाकर अकबर को सुनाये।

दिल्ली में भेंट होने की बात श्री रघुराज सिंह ने अपनी 'रामरसिकावली' के इस पद में लिखी है—जब उन्होंने एक राजकुमारी की पहचान बता दी थी—

† नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'सूरसागर', प्रथम स्कंध, पृष्ठ १७०, पद ३२५

साह सुन्यो सुख से सुबेग ही बुलायो दिल्ली,
पूछ्यौ कौन है तू सूर कह्यौ पूछ बेटी सों।
साह कह्यौ जान्यो कैसे सूर कह्यौ अंग-तिल,
साह पुछवायो सो तुरत एक चेटी सों॥
कनक कह्यो कहत तुरन्त ही सरीर छूटो,
इर परे कहि तनु तजि हरि भेंटी सों।
भनै 'रघुराज' शाह सूर पद सिर नाम,
पूछ हरिदास मोरि भवभीति मेटी सों॥ *

प्रयाग में भेंट होने का संकेत 'मुंशियात-अबुलफजल' में संकलित सूरदास नामक व्यक्ति को लिखा अकबर का वह पत्र है, जिसके कुछ अंश की प्रतिलिपि अन्यत्र दी जा चुकी है। इस पत्र में अबुलफजल ने 'प्रयाग' के स्थान पर 'इलाहाबाद' लिखा है। स्थान-निर्णय के साथ-साथ काल-निर्णय में भी इस शब्द से बड़ी सहायता मिलती है।

(ii) काल-निर्णय

(१) सीकरी में सम्राट् अकबर सं० १६२६ में संतान की कामना से रहा करते थे। इसके पश्चात् संवत् १६३१ से ४० तक फतहपुर सीकरी उनकी एक प्रकार की राजधानी रही। अतएव या तो वे संवत् १६२६ में सूरदास से मिले होंगे या सं० १६३१ से ४० तक, नौ वर्षों में।

(२) मथुरा में सूरदास की भेंट के साथ तानसेन का नाम दिया हुआ है। अकबर के दरबार में तानसेन सं० १६२१ में

---

* इसी प्रकार की कथा मियाँ सिंह के 'भक्तविनोद' में भी लिखी बतायी जाती है; अन्तर केवल इतना है कि उसमें राजकुमारी के स्थान पर दासी को पहचाना गया है।

आये थे। अतः यदि वस्तुतः इस समय तानसेन अकबर के साथ थे, तो यह भेंट संवत् १६२१ के पश्चात् ही होनी चाहिए।

(३) दिल्ली तो अकबर कई बार गया था। इसलिए कहा नहीं जा सकता कि सूरदास से उसकी भेंट कब हुई।

(४) 'मुंशियात-अबुलफजल' में अबुलफजल का पत्र मिलता है। ये अकबर के दरबार में सं० १६३१ में आये थे। परन्तु प्रयाग के साथ इलाहाबाद का नाम मिलता है और यह नामकरण सं० १६४० के लगभग हुआ था। इस पत्र से एक संकेत यह भी मिलता है कि अकबर सूरदास को अपना शिष्य बनाना चाहता था; क्योंकि वह 'दीन इलाही' मत का प्रवर्त्तक घोषित हो चुका था। इतिहास में यह घटना सं० १६३६ की मानी गयी है। अतः उक्त पत्र इसके बाद ही लिखा गया होगा। इस विवेचना के आधार पर उक्त पत्र के लिखे जाने की तिथि सं० १६४२ के लगभग मानी जा सकती है।

(iii) व्याख्या

सारांश यह कि अकबरी दरबार से सूर के सम्बन्ध में मतभेद होने का कारण है। इतिहासकार स्मिथ के अनुसार अकबर के पुत्र का जन्म सं० १६२६ में हुआ था। अकबर का विश्वास था कि उसके पुत्र का जन्म सीकरी के शेख सलीम चिश्ती की कृपा से हुआ है। अतः उसकी दृष्टि में सीकरी बड़ा पवित्र स्थान था। अकबर ने वहाँ जो सुन्दर महल बनवाये हैं, उनका कारण यही विश्वास जान पड़ता है। यही नहीं, सीकरी के निकट ही फतहपुर नगर बसाकर वह संवत् १६३१ से ४० तक वहीं रहा भी। सूरदास का अकबर को सुनाने के लिए जो पद दिया गया है, उसकी 'सीकरी में कहा भगत को काम' वाली पंक्ति से यही

ज्ञात होता है कि यदि सूर अकबर से मिले होंगे, तो सीकरी में ही। 'यदि' कहने की अवश्यकता यह है कि उक्त पद सूरदास ही का है, यह निश्चित नहीं और पद में केवल सूर का नाम देखकर उसे उनका मान लेना हम ठीक नहीं समझते।

पर भारतेंदुजी ने सूर का मृत्यु-संवत् १६२० माना है। यदि यह सत्य है, तो अकबर से सूर की भेंट और उक्त पद, सब कपोलकल्पित ही समझना चाहिए। कारण, अकबर गद्दी पर तो सं० १६१२ में बैठा था, परन्तु बैरम खाँ के कारण वह स्वतंत्र नहीं था। इस बन्धन से वह संवत् १६१८ में स्वतंत्र हो सका, जब बैरम खाँ परास्त हो गया। अतः केवल दो वर्षों में (१६१८ से २० तक) सूर की अकबर से भेंट हो जाना नितांत असम्भव है। इसका एक कारण यह है कि अकबर की अवस्था उस समय बहुत छोटी थी और इस अवस्था में वह संगीत का इतना प्रेमी नहीं हो सकता कि सूर को बुलाकर उनसे भेंट करता। दूसरे, उसके राज्य में इतनी शान्ति भी नहीं थी कि उसका चित्त इस प्रकार की बातों में लगता।

संवत् १६४२ के विषय में भी एक बात हमें कहनी है। अबुलफजल के पत्र से ज्ञात होता है कि सूरदास प्रयाग से दूर, संभवतः बनारस में रहते थे। अकबर का दीन इलाही मत चल चुका था और अबुलफजल ने सूरदास से अकबर का शिष्य बनने को कहा था। उस समय सूर की अवस्था लगभग सौ वर्ष की थी। अतः यह विश्वास नहीं होता कि वे अपना स्थान छोड़कर अकबर की आज्ञा से किसी दूसरे स्थान को जाने में समर्थ हो सके होंगे। साधु-संतों के सत्संग के प्रेमी सम्राट् ने भी संसार से विरक्त सूर को इतना कष्ट देने का विचार किया होगा, यह भी समझ में नहीं आता। अतः संभव है कि सम्राट् ने स्वयं ही सूर के पास जाकर

भेंट की हो। ऐसी स्थिति में यदि यह बात सत्य है—सत्य हो भी सकती है; क्योंकि अकबर साधु-संतों की संगति का बड़ा प्रेमी था और उनके दर्शन करके अपने को कृतार्थ समझता था—तो स्थान-निर्णय की समस्या एक प्रकार से हल हो जाती है, परंतु काल-निर्णय की समस्या और भी कठिन हो जायगी।

(iv) आलोचना

'चौरासी वार्ता' के आधार पर फतहपुर सीकरी में अकबर और सूरदासजी की जो भेंट हुई बतायी जाती है, उसी को जोधपुर के कविराज मुरारिदान ने 'आईने-अकबरी' में सूरदास के उल्लेख का कारण बताया है। परन्तु हमारी समझ में निश्चयपूर्वक इस सम्बन्ध में कुछ कहना ठीक नहीं; क्योंकि 'वार्ता' और 'आईने-अकबरी' में यह वर्णन नितांत भिन्न है। कुछ आलोचकों का कहना है कि 'आईने-अकबरी' के मत को भ्रमात्मक मानने का कोई प्रसंग नहीं; क्योंकि उसके लेखक शेख अबुलफजल नागौरी बड़े पक्षपातशून्य पुरुष थे। उन्होंने जो कुछ लिखा है, सोच-समझकर ही लिखा है। इसलिए हमें उस पर विश्वास करना चाहिए। * हम 'आईने-अकबरी' के कथन पर अविश्वास तो नहीं करते, परन्तु सहसा सूरदास का नाममात्र देखकर यह मानने को भी हम तैयार नहीं कि अकबर के दरबार में जिस सूरदास के होने का वर्णन किया गया है, वे हमारे महाकवि सूरदास ही थे। दूसरी बात यह कि सीकरी में जिस गायक का अकबर ने गाना सुना था, वे कुम्भनदास† थे, सूरदास नहीं। सीकरी के पश्चात् अधिक जोरदार प्रमाण प्रयाग के सम्बन्ध में

---

* सूरमुक्तावली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १८

† हिंदी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ६१२

मिलता है। सूरदास उस समय गोवर्द्धन के श्रीनाथजी के मन्दिर में रहते थे। अतः अकबर ने केवल उनका गाना सुनकर उन्हें प्रयाग बुलवा भेजा होगा, यह ठीक नहीं जान पड़ता। दिल्ली और मथुरा में भेंट होने की बात किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में नहीं मिलती, यद्यपि हमें यह उचित जान पड़ता है कि मथुरा होकर जाते हुए सम्राट् ने सूर को बुलवा भेजा हो अथवा उनको अन्धा जानकर स्वयं ही उनसे मिलने को चले गये हों।

सत्य जो कुछ हो, परन्तु सूर और अकबर की भेंट के संबंध में यह भली भाँति ध्यान में रखना चाहिए कि भेंट से तात्पर्य आश्रय ग्रहण करना कदापि नहीं है। कई आलोचकों * ने इसका यही आशय निकालकर शंका की है कि सूर भला वृद्धावस्था में अपनी उदरपूर्ति के लिए अकबर का आश्रय कैसे ग्रहण करते? हमारी समझ में भेंट का आशय—यदि वह कभी हुई हो, तो यही है कि सूर की प्रशंसा सुनकर अकबर ने उन्हें बुलवाया: बड़ी कोशिश से उन्हें दरबार में लाया गया। पर न सूर को ही इससे प्रसन्नता हुई और न सम्राट् को ही। सूर एक-आध उलटा-सीधा पद सुनाकर अपनी प्रगाढ़ भगवद्भक्ति का परिचय देकर वापस चले गये। 'चौरासी वार्ता' से भी स्पष्ट यही होता है कि सूरदास स्वतन्त्र गायक थे।

साथ ही यह भी स्मरण रखने योग्य है कि सूरदास नामधारी ‡ पाँच-छः कवि हिन्दी-साहित्य में हो गये हैं और 'आईने-

---

* सूरमुक्तावली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ २४

‡ बाबू राधाकृष्णदास ने चार सूरदासों का वर्णन किया है—

(१) सूरदास मदनमोहन—अकबर इनको बहुत चाहता था और उसने इन्हें सँडीले का अधिपति बना दिया था।

अकबरी' में भी तीन-चार सूरदासों का नाम गायकों की सूची में मिलता है। अतः जिस सूरदास से अकबर की भेंट हुई, वह सूरसागर-रचयिता हमारे महात्मा और महाकवि सूरदास ही थे या अन्य कोई नामी गायक और प्रसिद्ध कवि, यह कहना कठिन है।

(झ) सूर का मृत्यु-स्थान

'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में सूर का मृत्यु-स्थान व्रजप्रदेश के निकट पारासोली नामक गाँव बताया जाता है। यह गोवर्द्धन के पास है। गोस्वामी गोकुलनाथ के अनुसार सूरदासजी अपने अंतिम दिनों में गोवर्द्धन के श्रीनाथजी के मन्दिर से हटकर पारासोली चले आये थे। गोस्वामीजी को शीघ्र ही इस बात की सूचना दी गयी। उस समय वे आरती कर रहे थे। जब वे उसे समाप्त कर पारासोली पहुँचे, तो सूर को उन्होंने अचेतावस्था में

---

(२) वृंदावननिवासी सूरदास—ध्रुवदास ने इनके सम्बन्ध में लिखा है—

सेयो नीको भाँति सों श्रीसंकेत स्थान।
रह्यो बड़ाई छांड़िके सूरज द्विज कल्यान ॥

(३) विल्वमंगल सूरदास।

(४) 'रामरसिकावली भक्तिमाला' में महाराज रघुराजसिंह द्वारा वर्णित सूरदास।

इनके अतिरिक्त दो सूरदासों का वर्णन और भी किया गया है—

(१) वे सूरदास, जिनका उल्लेख डाक्टर ग्रियर्सन ने सूदन के सम्बन्ध में किया है।

(२) सूर साहब (सूरदास), जिनका उल्लेख राधास्वामी-संप्रदाय में हुआ है।

—नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका, भाग ४

पड़ा पाया। उस समय उनके साथ रामदास, कुम्भनदास, गोविंद स्वामी और चतुर्भुजदास भी थे। वृद्धावस्था में सूरदास के अचेत होने का समाचार पाकर मृत्यु की आशंका से इन लोगों का साथ हो जाना स्वाभाविक ही था। प्रयत्न करने पर सूरदासजी शीघ्र ही होश में आकर उठ बैठे। गोस्वामी गोकुलनाथजी ने आत्मीय भाव से उनसे पूछा—अब चित्त कैसा है? मरणासन्न सूर ने उत्तर दिया—बस, आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था महाराज! इसके पश्चात् उन्होंने यह पद गाया—

प्रभु को देखो एक सुभाई।
अति-गंभीर-उदार-उदधि हरि, जानसिरोमनि राइ।*

इस पद को गाते-गाते भक्ति में विह्वल कवि फिर मूर्च्छित हो गया। गोस्वामी गोकुलनाथजी ने फिर उन्हें चेत में लाने का प्रयत्न किया। सूरदास के चैतन्य होने पर गोस्वामीजी ने उनसे पूछा—चित्तवृत्ति इस समय कहाँ है? महात्मा सूरदास ने उनकी इस बात का सीधा-सादा उत्तर न देकर यह पद गाया—

खंजन नैन रूपरस माते।
अतिसै चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि-चलि जात निकट स्रवनन के उलटि-पलटि ताटंक फँदाते।
सूरदास अंजन गुन अटकै नातरु अब उड़ि जाते।

यह पद गाते-गाते उन्होंने मुदित होकर सदैव के लिए आँखें मूँद लीं। इस सम्बन्ध मे भारतेंदुजी ने एक बड़ा सुन्दर दोहा कहा है—

मन समुद्र भयो सूर को सीप भये चख लाल।
हरि मुक्ताहल परत ही मूँदि गये तत्काल॥

---

* नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर, प्रथम स्कंध (विनय), पृ० ५, पद ८

(अ) सूर का मृत्यु-संवत्

'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' और '२५२ वैष्णवों की वार्ता' के आधार पर संकलित अष्टछाप में लिखा है कि "इतनो कहत ही सूरदासजी ने या शरीर को त्याग कीयौ । सो भगवल्लीला में प्राप्त भये। पाछें श्रीगुसाईंजी सब सेवकन सहित श्रीगोवर्द्धन आयौ।" * इससे स्पष्ट होता है कि सूरदास की मृत्यु गोस्वामी विट्ठलनाथ के ही सामने हुई। गोस्वामीजी का मृत्यु-संवत् १६४२ माना जाता है। अतएव यदि हम 'वार्ता' के कथन को सत्य मानें, तो हमें मानना पड़ेगा कि सूरदास की मृत्यु-संवत् १६४२ के पहले ही हुई।

बाबू राधाकृष्ण दास ने अपने संपादित सूरसागर की भूमिका में कवि के जीवन-चरित के सम्बन्ध में लिखा है † कि मुझे सूरदास के ८० वर्ष तक जीवित रहने का पक्का प्रमाण मिला है। अपने इस कथन की पुष्टि में वे कोई प्रमाण नहीं दे पाये; इससे उनकी बात मानने में साहित्य के विद्यार्थियों को आपत्ति हो सकती है। हमारी सम्मति में सूर ने लगभग ८० वर्ष की आयु अवश्य पायी होगी। कारण, 'सूरसारावली' की रचना के समय उन्हीं के कथन के अनुसार उनकी अवस्था ६७ वर्ष की थी। अतः यदि सूर का जन्म संवत् १५४० माना जाय, तो ८० वर्ष उसमें जोड़ देने पर सूर का मृत्यु-संवत् १६२० आता है। गोस्वामी विट्ठलनाथ की मृत्यु संवत् १६४२ में हुई थी। अतः उक्त संवत् इससे २२ वर्ष पहले पड़ता है। 'वार्ता' के कथन पर विश्वास करने पर इस संवत् को मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

---

* अष्टछाप, पृ० १८

† जीवन-चरित, पृ० १, पंक्ति २०

'साहित्यलहरी' का रचनाकाल स्वयं कवि ने संवत् १६०७ माना है। इस ग्रंथ में 'सूरसागर' के पदों का संकलन होने के कारण यह अनुमान होता है कि उक्त बृहत् ग्रंथ की समाप्ति के पश्चात् ही इसकी रचना में हाथ लगाया गया होगा। 'सूरसागर' के पदों की संख्या के विषय में बहुत मतभेद है ; फिर भी उसकी प्राप्त संख्या देखकर ही कहना पड़ता है कि कवि को उक्त ग्रंथ की रचना में ही अपनी आयु का अधिकांश भाग लगा देना पड़ा होगा। अतः 'सूरसागर' के पश्चात् 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' की रचना करके सूरदास बहुत अधिक वर्ष तक जीवित न रहे होंगे। अनुमान है कि संवत् १६०७ में 'साहित्य-लहरी' की रचना के पश्चात् वे अधिक-से-अधिक १२-१३ वर्ष ही और जिये होंगे। अतः उनकी मृत्यु सं० १६२० के आस-पास हुई होगी।

इस मृत्यु-संवत् को अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है। इसके मानने में एक आपत्ति सूरदासजी की बादशाह अकबर से भेंट-सम्बन्धी अनुमान है। अबुलफजल नामक अकबर के विद्वान् मंत्री ने 'इंशाए-अबुलफजल' नाम का एक ग्रंथ लिखा है। यह पुस्तक अकबर के लिखे हुए पत्रों का एक प्रकार से संग्रह है। इसमें एक पत्र सूरदास नाम के किसी व्यक्ति को भी लिखा गया है। इस पत्र में लिखने की तिथि नहीं है। इससे इस सम्बन्ध में कोई बात नहीं कही जा सकती कि यह पत्र कब लिखा गया था। अकबरनामे के आधार पर मुंशी देवीप्रसाद संवत् १६४० में अकबर का प्रयाग आना और किला तथा बाँध बनवाना स्वीकार करते हैं। अतः यदि अकबर और सूरदास की भेंट हुई होगी, तो वह संवत् १६४० में ही हो सकती है। इसके दो वर्ष के भीतर ही किसी समय उनकी मृत्यु भी हो गयी होगी ; क्योंकि

गोस्वामी विट्ठलनाथ का मृत्यु-संवत् १६४२ है । बाबू राधाकृष्ण का कथन स्वीकार करने पर सूर की मृत्यु का जो संवत् १६२० आता है, उसमें और इसमें लगभग २० वर्ष का अन्तर है। परन्तु कुछ इतिहास-लेखकों का कहना है कि अकबर का उक्त पत्र सूरदास कवि को नहीं, इसी नाम के किसी और सज्जन को लिखा गया था, जो काशी में ही रहते थे। इससे सूर की मृत्यु का संवत् १६२० ही ठीक है। गोस्वामी विट्ठलनाथ की अवस्था इस समय ४८ वर्ष की थी। अनुमान होता है कि उनका अभ्युदय ३५ वर्ष की अवस्था के पश्चात् ही हुआ होगा। अष्टछाप के लिए अपने जिन शिष्यों को उन्होंने चुना होगा, वे इसी अवस्था के लगभग बने होंगे ; इससे पहले किसी तरह नहीं । अतः संवत् १६१० के बाद ही 'अष्टछाप' की स्थापना हुई होगी। सूरदासजी ने कहा है—

थीम गोसाईं करी मेरी आठ मध्ये छाप ।*

अतः यह निश्चित है कि अपने इस पद की रचना के अर्थात् संवत् १६१० के पश्चात् सूरदास कुछ वर्ष तक अवश्य ही जीवित रहे होंगे। इससे भी सूर का मृत्यु-संवत् १६२० मानने की पुष्टि होती है।

(ट) सूर क्या जन्मांध थे ?

सूरदास के सम्बन्ध में अब तक यही प्रसिद्ध था कि वे जन्मांध थे। सम्भव है, इस विचार का अनुमान उनके 'सूर' नाम ने करा दिया हो। 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में इस सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा गया है। हाँ, देशाधिपति से भेंटवाले प्रसंग में सम्राट् ने शंका अवश्य की है कि "जो सूरदासजी तुम्हारे लोचन तो देखियत नाहीं और बिन देखे तुम उपमा को देत हौ

*सूरसारावली, पद नं० ११०२

सो तुम कैसे देत हौ।" इससे सम्राट् से भेंट के समय उनका अंधा होना स्पष्ट होता है। परन्तु 'वार्ता' में अन्यत्र सूरदासजी का लोगों को चौपड़ खेलते देखना भी लिखा है, जिससे उनकी नेत्रहीनता की बात असत्य जान पड़ती है। 'भक्तमाल' में भी, जो 'वार्ता' के पश्चात् सबसे प्रसिद्ध प्रामाणिक ग्रंथ रह जाता है, उनको जन्मांध नहीं बताया गया है। हाँ, रीवाँ-नरेश महाराज रघुराजसिंह-कृत 'रामरसिकावली' में इस सम्बन्ध में यह पंक्ति लिखी गयी है—

जन्महिं ते हैं नैनविहीना।

मियाँ सिंह ने अपने 'भक्तविनोद' में और सरदार कविकृत 'सूरदास के दृष्टकूट' नामक ग्रन्थ के अन्त में सूरदास का स्वरचित जो वंश-परिचय दिया हुआ है, उसके आधार पर भी वे जन्मांध ही माने गये हैं। 'दृष्टकूट' में इस सम्बन्ध में यह भी लिखा है कि जन्मांध होने के कारण एक बार ये कुएँ में गिर पड़े थे। छः दिन तक उस कुएँ में वैसे ही भूखे-प्यासे पड़े रहे। सातवें दिन भगवान् श्रीकृष्ण को इनपर दया आ गयी। उन्होंने इनको चक्षु दिये और कुएँ से बाहर कर दिया। भगवान् का दिव्य रूप देखकर सूर ने उनसे यह प्रार्थना की कि मुझे पूर्ववत् ही अन्धा कर दीजिए। इसका कारण उन्होंने यह बताया कि जिन चक्षुओं से भगवान् का दिव्य रूप हम देख चुके हैं, उन्हीं से सांसारिक वस्तुओं और मनुष्यों को देखना अनुचित होगा। इसी प्रकार, एक दूसरी किंवदंती है कि एक अत्यन्त सुन्दर स्त्री को देखकर ये चञ्चल चित्त और उस पर मुग्ध हो गये थे। अन्त में चेत होने पर इन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई और इन्होंने उसी युवती से सुई माँगकर अपनी आँखें फोड़ लीं।

'रामरसिकावली' और 'भक्तविनोद' के उक्त कथन को

हम प्रामाणिक नहीं समझते। कारण यह है कि इनके प्रणेता रघुराजसिंह और मियाँ सिंह सूर के समकालीन नहीं थे। इन सज्जनों ने अपने ग्रन्थ 'वार्ता', 'भक्तमाल' और तत्कालीन प्रचलित किंवदंतियों के आधार पर ही लिखे थे। उद्देश्य भी इन लेखकों का शुद्ध साहित्यिक अन्वेषण नहीं था। रही 'दृष्टकूट' में दी हुई किंवदंतियों की बात। इनमें से दूसरी किंवदंती के विषय में अधिक छानबीन करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। कारण यह है कि 'भक्तमाल' * में यही किंवदंती बिल्व-मङ्गल के लिए प्रायः इसी रूप में लिखी बतायी जाती है। मदनकोष अर्थात् जीवन-चरित्रस्तोत्र † में बिल्वमङ्गल का नाम बिल्वमङ्गल सूर दिया गया है और इन्हें महाप्रभु वल्लभाचार्य का गुरु बताया गया है। जान पड़ता है, नाम की समानता से ही भक्तकवि सूर-दास के सम्बन्ध में भी यह किंवदंती प्रचलित हो गयी थी। यही नहीं, ऐसी ही अन्य अनेक किंवदंतियाँ और घटनाएँ साधु-महात्माओं के चरित्र के विषय में प्रायः प्रचलित हो जाया करती हैं। हाँ, पहली दंतकथा एक रूपक के रूप में स्वीकार करने को हम तैयार हैं। उस दशा में चक्षुओं से इनका आशय ज्ञान-चक्षु से लेना होगा। जान पड़ता है, कुएँ में गिरने के पश्चात् जब भगवान् कृष्ण ने कृपा करके इन्हें बाहर कर दिया, तब इन्हें ज्ञान-चक्षु देना भी आवश्यक समझा—इसके पहले वे इस चक्षु से हीन थे।

सारांश यह कि महात्मा सूरदास जन्मांध नहीं हो सकते। उनको जन्मांध बतानेवाले कथनों पर हम ऊपर विचार कर चुके

---

* पृष्ठ ३७३, छप्पय ४६ और उसकी व्याख्या।

† डा० जनार्दन मिश्रकृत सूरदास (अँगरेजी) के पृष्ठ २३ की टिप्पणी—मदनकोष। खेमराज श्रीकृष्णदास, बंबई। सं० १९६४, सन् १९०७, पृष्ठ २२२।

हैं। यही नहीं, सूरकाव्य में कवि की वर्णन-कुशलता देखकर भी यही कहना पड़ता है कि वे जन्मांध नहीं हो सकते। कवि ने अपनी रचनाओं में प्रकृति का—विभिन्न प्रकार के वर्णों और मनुष्य के आंतरिक भावों तथा बाह्य हाव-भाव का—जैसा सूक्ष्म वर्णन किया है, वैसा कोई जन्मांध नहीं कर सकता। इसी प्रकार मनोरम और अत्यंत उपयुक्त उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं के चयन से भी यही प्रकट होता है कि केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ऐसा वर्णन नहीं किया जा सकता। यह लिखते समय "जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ जाय कवि" वाली उक्ति का हमें पूर्ण ध्यान और इस पर पूर्ण विश्वास है; फिर भी हम सूर को जन्मांध मानने को तैयार नहीं।

अब प्रश्न यह है कि सूर अंधे कब हुए। इस विषय में कुछ महाशयों का कहना है कि इसका निर्णय करना अत्यन्त असंभव है *। हमारी समझ में अभी इतना निराश होने की आवश्यकता नहीं। स्वयं 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' में ही कुछ स्थल ऐसे हैं, जिनसे सूरदास के नेत्र होने का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। नीचे 'अष्टछाप' से ऐसे कुछ वाक्य दिये जाते हैं—

(१) तब श्रीआचार्यजी महाप्रभून ने अपने श्रीमुख सों कह्यौ जो सूरदास श्रीगोकुल कों दर्शन करौ। × × × ताते दर्शन करत मात्र सूरदासजी कों श्रीगोपाल की बाललीला स्फुर्णा भई।

—अष्टछाप, पृ० ६

(२) तब सूरदासजी सों कह्यौ जो सूरदास ऊपर आउ स्नान करिकें श्रीनाथजी कौ दर्शन करि। तब सूरदासजी पर्वत ऊपर जायकै श्रीनाथजी कौ दर्शन कीयौ।

—अष्टछाप, पृ० ७

* हिंदी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० ३३५

(३) एक समे सूरदासजी मार्ग में चले जात हैं जो कोऊ चौपड़ खेलत हुते। सो वा चौपड़ खेल में ऐसे लीन है (हे) जो कोऊ आवते जाते की सुधि नाहीं। ऐसे खेल में मग्न हैं। सो देख सूरदासजी के संग के भगवदीय है तिनसो सूरदासजी ने कह्यौ जो देखौ वह प्राणी कैसौ अपनौ जनमारो ⚹ (जमारो) खोवत हैं। भगवान ने तौ मनुष्य देह दीनी है सो तौ अपनी सेवा भजन के लियै दीनी है सौ ये तौ या देह सौं हाड़ कूटत हैं।

—अष्टछाप, पृष्ठ १०

इन अवतरणों तथा 'वार्ता' से संकलित दो-एक अन्य वाक्यों को देखकर डाक्टर जनार्दन मिश्र का कहना है कि सूरदास इस समय तक अंधे नहीं हुए थे। †

स्वयं सूरकाव्य में कुछ स्थल ऐसे हैं, जिनसे यह ध्वनि निकलती है कि कवि जन्मांध नहीं था ; पर्याप्त आयु बिताने के पश्चात् ही उसके नेत्र ज्योति-हीन हुए थे। दो-एक पदों की इस विषय से सम्बन्धित पंक्तियाँ देखिए—

(१) इत उत देखत जन्म गयो।
या माया झूठी कै लालच दुहुँ दृग अन्ध भयो॥ ‡

⚹ समय।

† अंतिम अवतरण की ओर संकेत करते हुए डाक्टर साहब लिखते हैं—

This statement does not leave any doubt that Surdas was not blind. He could see people playing at dice and he could observe also that they were absorbed in the play.

Surdas P- 25.

‡ नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पृष्ठ १५४, पद २६१।

(२) भरोसो दृढ़ हरिचरनन केरो।
सूर कहा कहि दुबिध आँधरो, बिना मोल को चेरो ॥

(३) सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनो पन ऐसे ही बीते केस भये सिर स्वेत ॥
आँखिन अंध स्रवन नहिं सुनियत थाके चरन समेत *

कुछ आलोचकों का कहना है कि ये पद प्रथम स्कंध के हैं और इनसे स्पष्ट होता है कि सूरदास वृद्धावस्था में अंधे हुए थे। उनके इस निश्चय का कारण वियोगी हरि का यह अनुमान है कि सूरदास ने 'सूरसागर' के दसवें स्कन्ध की रचना सबसे पहले की थी और उसकी समाप्ति के पश्चात् अवशिष्ट स्कन्धों की रचना में हाथ लगाया था। दसवाँ स्कन्ध बहुत बड़ा है। अत: उसके समाप्त होने में बहुत समय लग गया होगा। उसके पश्चात् जब अन्य स्कन्ध रचे गये, तब स्पष्ट ही, कवि की वृद्धावस्था होगी।

हम इस कथन से पूर्णतया सहमत नहीं हैं। हम यह तो मानते हैं कि सूरदास जन्मांध नहीं हो सकते ; परन्तु यह मानने को तैयार नहीं कि उक्त पदों के आधार पर ही इसे सिद्ध किया जा सकता है। यह संभव है कि 'सूरसागर' के दसवें स्कन्ध की ही रचना कवि ने सबसे पहले की हो और शेष स्कन्ध बाद में बनाये हों ; परन्तु केवल बाद में बनाये हुए पदों में 'आँधरो' शब्द अथवा उसका अन्य कोई रूप देखकर सूर को वृद्धावस्था में अंधा हुआ मान लेने को हम तैयार नहीं। उक्त पदों से यह ध्वनि नहीं निकलती कि कवि ने केवल (particularly) अपने

* नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित सूरसागर, प्रथम स्कन्ध, पृष्ठ १५६, पद २६६।

108/14

ही विषय में उक्त शब्द का संकेत किया है। हमारी सम्मति में तो इसका संकेत सामान्य रूप में (general) हुआ है और इसका संकेत ज्ञान-चक्षुहीन, विषय-वासनाओं में लिप्त साधारण सांसारिक जीवों के ही लिए हुआ है। दूसरी बात यह है कि कोई भी कवि यदि अपने विषय में कुछ कहेगा, तो इतनी साधारण रीति से (lightly) नहीं। तुलसीदासजी ने अपनी बाहु-पीड़ा के सम्बन्ध में प्रार्थना की है तो पूरा ग्रंथ ही बना डाला है। अँगरेजी कवि मिल्टन जब अपनी चक्षुहीनता के विषय में लिखता है—

When I consider how my light is spent
Ere half my days in this dark world and wide.

तब उसकी आंतरिक वेदना का पूर्ण चित्र हमारे सामने आ जाता है। क्या सूरदास के उक्त पदों में यही वेदना है ? अस्तु। यह तो निश्चय है कि सूर जन्मांध नहीं थे और उनकी काव्य-कुशलता, वर्णन-शैली, प्रकृति-चित्रण आदि के सूक्ष्म विवेचन से यह भी स्पष्ट है कि बहुत समय तक उन्होंने आँखों का सुख उठाया होगा और उसके पश्चात् ही वे नेत्रहीन हुए होंगे। परंतु सूरकाव्य से इस संबंध में अभी तक कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिल सका, जो सर्वमान्य हो।



काव्य-परिचय

'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार सूरदासजी ने अपने जीवन-काल में 'सहस्रवधि पद कीय।'* परन्तु बाबू राधाकृष्ण दास ने लिखा है—"सूरदासजी के सवा लक्ष पद बनाने की जो किंवदन्ती प्रसिद्ध है, वह ठीक विदित होती है; क्योंकि एक लाख पद तो श्री वल्लभाचार्य के शिष्य होने के उपरांत और 'सारावली' के समाप्त होने तक बनाये। इसके आगे-पीछे के तो अलग ही रहे।"† इसके उपरान्त 'शिवसिंह-सरोज' के लेखक शिवसिंह सेंगर ने लिखा है—"इनका बनाया सूरसागर ग्रन्थ विख्यात है। हमने इनके ६० हजार पद तक देखे हैं, समग्र ग्रन्थ कहीं नहीं देखा।"‡

सूरदासजी के पदों की संख्या के सम्बन्ध में उक्त तीनों मतों के अतिरिक्त और कोई प्राचीन उल्लेख नहीं मिलता। इनमें प्रथम दो का अर्थ अनिश्चित ही समझना चाहिये। 'सहस्रावधि', 'सवा लक्ष' और 'एक लाख' का अर्थ बहुसंख्यावाचक ही समझना न्यायसंगत है। हाँ, 'सरोज'-कार ने जो ६० हजार पदों की निश्चित बात लिखी है, वह अवश्य विचारणीय है। परन्तु हम समझते हैं कि उन्होंने किंवदन्तियों की बात सच मानकर सूरदासजी के ६० हजार पदों पर विश्वास कर लिया होगा; इस बात की छानबीन करने का प्रयत्न न किया होगा कि जितने पद

* चौरासी वैष्णवों की वार्ता, पृ० २७६

† श्री सूरदासजी का जीवन-चरित (सूरसागर की भूमिका) पृ० २

‡ शिवसिंह सरोज (न० कि० प्रेस, लखनऊ) पृ० ५२५

उन्होंने देखे हैं, वे केवल सूरदासजी के बनाये हुए हैं अथवा सूरदास नामक अन्य कवियों के पद भी उनमें सम्मिलित हैं। इसका आशय यह नहीं कि हम सूरदासजी के ६० हजार पद बनाने की बात को असत्य अथवा असम्भव मानते हैं, प्रत्युत हमारा तो यह विश्वास है कि सूरदासजी के पदों की संख्या इसीके लगभग होगी। 'सूरसारावली' में स्वयं कवि ने लिखा है—

ता दिन ते हरि-लीला गाई, एक लक्ष पद बन्द ;

ताको सार सूरसारावलि गावत अति आनन्द।†

इसका आशय यह हुआ कि कवि के 'सूरसागर' में एक लाख पद थे; परन्तु प्रमाणों के अभाव में केवल किंवदन्तियों के आधार पर कुछ कहना हम अनुचित समझते हैं। 'सूरसागर' के अब तक प्राप्त पदों की संख्या लगभग ४१३२ ही है। हाँ, नागरी-प्रचारिणी सभा के 'सूरसागर' में इस संख्या के बहुत कुछ बढ़ जाने की आशा है। बाबू श्यामसुन्दर दास ने अपने 'भाषा और साहित्य' नामक ग्रन्थ में इनकी संख्या ६ हजार बतायी है।*

रचना-काल

रचना-काल की दृष्टि से समस्त 'सूरकाव्य' के हम तीन भाग कर सकते हैं : 'सूरसागर' का *प्रथम स्कंध*—विनय-सम्बन्धी पद और कथा-भाग। 'सूरसागर' का *दशम स्कंध*—'भगवल्लीला' वर्णन। *शेष भाग*—'सूरसागर' के शेष स्कंध और साहित्यलहरी के पद; विविध विषय—पौराणिक आख्यानों और अवतारों का वर्णन।

प्रथम स्कंध के विषय में महाप्रभु वल्लभाचार्य के कथन—'काहे घिघियात है'—को लेकर यह कहा गया है कि इसकी रचना संवत् १५८७ (सन् १५३०) के पहले हो चुकी होगी। कारण

---

† सूरसारावली पद १००१

* हिंदी भाषा और साहित्य ; पृ० ३२३ (सं० ६४ का संस्करण)

यह है कि श्रीनाथजी की 'प्राकट्य वार्ता' के अनुसार इसी समय के लगभग उन्होंने आचार्य से दीक्षा ली थी। इसके पश्चात् उन्होंने साधारणत: अपना विषय बदल दिया और 'भगवल्लीला-वर्णन' करने लगे। कथा-भाग की रचना 'सूरसागर' के संपादन के समय की है। यह कार्य सं० १६०७ के पहले हुआ होगा। इसलिए हम इस भाग का रचना-काल सं० १६०० से १६०७ तक मान सकते हैं।

दशम स्कंध के अन्तर्गत कृष्ण और राधा-सम्बन्धी विषयों का वर्णन है। इन पदों की रचना का आरम्भ सं० १५८७ से ही समझना चाहिए। 'सूरसागर' की समाप्ति सं० १६०७ के पूर्व मानी जाती है, क्योंकि 'साहित्यलहरी' का रचना-काल यही है। इस दूसरे ग्रंथ के आरंभ तक 'सूरसागर' के समाप्त हो जाने के सम्बन्ध में जो धारणा है, उसका कारण यह कि 'सूरसारावली' और 'साहित्यलहरी' के रचना-काल में विशेष अन्तर नहीं हो सकता। हमारी सम्मति में यह तो सम्भव है कि 'साहित्यलहरी' अथवा 'सूरसारावली' के आरम्भवाले संवत् के पूर्व 'सूरसागर' समाप्त हो चुका हो; परन्तु शृंगार अथवा विनय-सम्बन्धी पदों की रचना का क्रम बिलकुल बन्द हो गया हो, इससे हम सहमत नहीं। कारण, यदि सूरदासजी की मृत्यु संवत् १६२० में हुई ही मान ली जाय, तो भी 'साहित्यलहरी' और 'सूरसारावली' की रचना सं० १६०७ के पश्चात् दो-तीन वर्ष के भीतर करके वे १२-१३ वर्ष जीवित रहे, और यह कोई स्वीकार नहीं कर सकता कि 'सूरसागर' जैसे बृहत् काव्य का रचयिता इस दीर्घ काल में शान्ति से बैठा रहा होगा।

शेष भाग का रचना-काल भी हम सं० १६०७ से सं० १६१० के बीच में मानना उचित समझते हैं। इन पदों का विषय

या तो सूरदासजी के प्रिय इष्टदेव के विविध रूपों के वर्णनों से भरा हुआ है या उनसे सम्बन्धित अन्य महापुरुषों के प्राचीन आख्यानों से।

अब हमें विचार करना है कि 'सूरकाव्य' का आरम्भ किस संवत् में हुआ। ऊपर कहा जा चुका है कि 'प्राकट्यवार्ता' के अनुसार महाप्रभु वल्लभाचार्य की मृत्यु सं० १५८७ में हुई। उन्होंने वृन्दावन में, पूर्णमल के मन्दिर में श्रीनाथजी की स्थापना सं० १५७६ में की थी। इनके कीर्तन की सेवा महाप्रभु ने कुम्भनदास को करने की आज्ञा दी। यह बात भी 'प्राकट्य वार्ता' में लिखी है। इसके दो-एक वर्ष बाद ही सूरदासजी की वल्लभाचार्य से भेंट हुई होगी। सुविधा के लिए इसे भेंट और उनके दीक्षित होने का संवत् १५८० मान सकते हैं। इसके पहले सूरदास विनय-सम्बन्धी पद रच चुके थे। इस कार्य में उन्हें लगभग ५ वर्ष अवश्य लगे होंगे। अतः 'सूरकाव्य' का आरम्भ हम संवत् १५७५ मान सकते हैं। इस प्रकार संवत् १५८० के लगभग काव्य-रचना-कार्य आरम्भ करके संवत् १६२० तक—लगभग ४० वर्ष—सूरदास अनवरत रूप से उसमें लगे रहे। भावपूर्ण कथाओं को लेकर उन्होंने जिन मुक्तक गीतों की रचना की, उनमें सदैव क्रम रहा हो, यह सम्भव नहीं जान पड़ता। अतः 'सूरसागर' के पूर्ण हो जाने के पश्चात् तथा समय-समय पर भी सभी विषयों के कुछ पदों की रचना का क्रम अवश्य चलता रहा होगा। यदि सूरदास के कुल पदों की संख्या केवल दस हजार ही मान ली जाय और यह स्वीकार कर लिया जाय कि कवि ने नियमित रूप से दो-तीन पदों की रचना नित्यप्रति की होगी, तब कहीं इतने पद लगभग २५ वर्ष में लिखे जा सके होंगे। फिर उनके संकलन, संपादन, क्रम-विभाजन आदि में भी कुछ समय लगा ही होगा।

इस प्रकार 'सूरसागर' की रचना के लिए साधनहीन सूरदास को अपने जीवन के ४० वर्ष लगाने पड़े हों, तो कोई आश्चर्य नहीं।

विषय-सहायक सामग्री और सूर की मौलिकता

'सूरसागर' में कृष्ण-जीवन की जितनी लीलाएँ वर्णित हैं, उनका आधार श्रीमद्भागवत नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ माना जाता है। जब तक सूरदासजी के जन्मांध होने, न होने का प्रश्न हल नहीं हो जाता, तब तक निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि सूर ने स्वयं ही कभी उक्त ग्रन्थ पढ़ा था अथवा केवल सुनी-सुनाई बातों के आधार पर ही अपने पदों की रचना की थी। असम्भव बात दोनों में कोई नहीं है। एक महाशय* ने तो स्पष्ट कह दिया है कि सूरदास काव्यशास्त्र के पंडित थे। पुराणों का उन्होंने अच्छा अध्ययन किया था। परन्तु यह बात सूर-काव्य देखकर लिखी गयी है या किसी प्रमाण के आधार पर, कहा नहीं जा सकता। 'चौरासी वार्ता' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाप्रभु वल्लभाचार्य ने ही उन्हें भागवत सुनाकर उसका रहस्य समझा दिया था। इसके पश्चात् उन्होंने 'सूरसागर' के मुख्य भाग की रचना में हाथ लगाया। एक दूसरे आलोचक का कहना है कि सूरदास को "मनुष्यों का ही नहीं, पशु-पक्षियों की प्रवृत्ति का भी अनुभव 'सतसंग' की वजह से हुआ था। वृन्दावन में वैष्णव महात्माओं में 'नानापुराणनिगमागम' की चर्चा सतत होती रहती थी। उनके सतसंग में रहने से सूरदासजी को बहुत लाभ हुआ।"† हो सकता है कि मथुरा और गोकुल में कृष्ण की पूर्ण जीवन-लीलाएँ सुनकर उन्होंने अपने पद रचे हों। एक ही

* कविता-कौमुदी पहला भाग, पृ० १७६

† सूर-पंचरत्न—भूमिका—पृ० ६१-६२

विषय पर जो अनेक पद गाये जाते हैं, उनका कारण भी यही जान पड़ता है कि भक्ति के आवेश में वे फुटकर पद गाया करते थे। उनके प्रिय विषय उनके आगे नाचते रहते और कवि के मुख से स्वतः पद निकलने लगते थे।

एक बात और है। 'सूरसागर' की रचना केवल भागवत के आधार पर की गयी नहीं मानी जा सकती। कारण, भागवत के दसवें स्कन्ध में राधा का कहीं उल्लेख नहीं है और 'सूरसागर' के विप्रलंभ-शृंगार के अधिकांश पद राधा से ही सम्बन्ध रखते हैं। इसी प्रकार दान-लीला का प्रसंग भी भागवत में नहीं मिलता। जान पड़ता है, भागवत के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रसंग के सत्संग में सूरदास चुपचाप सुनते रहते थे और एकान्त में उनपर मनन करके तत्सम्बन्धी पद बनाया करते थे।

अब प्रश्न यह है कि 'सूरसागर' में श्रीमद्भागवत के क्रम का जो अनुकरण किया गया है, उसका कारण क्या है? हमारी समझ में तो 'सूरसागर' का संकलन उनके किसी शिष्य या भक्त ने भागवत की कथा सामने रखकर किया होगा। तुलसीदास की 'गीतावली' और 'कवितावली' के विषय में भी ऐसा ही अनुमान किया जाता है। यदि यह ठीक है, तब उक्त क्रम उनकी सम्मति से ही रखा गया होगा। वल्लभ-सम्प्रदाय में भागवत का महत्व था भी बहुत अधिक। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य नित्यप्रति उसका पारायण किया करते थे। ऐसी स्थिति में यह बहुत स्वाभाविक है कि 'सूरसागर' के संपादन में सूर उसके क्रम का अनुकरण करते। यही नहीं, कृष्ण के जीवन-चरित्र के अतिरिक्त अनेक पौराणिक कथाओं और अवतारों का जो वर्णन 'सूरसागर' में मिलता है, उसका कारण भी यही है, क्योंकि सूर की रुचि इन विषयों में नहीं थी।

परन्तु, कृष्ण की जीवन-घटनाओं को कथा-रूप में कहने की साधारण प्रवृत्ति सूरदास में नहीं पायी जाती। उनका वर्णन निरुद्देश्य नहीं है। अपने काव्य में कृष्ण और गोपी-प्रसंग को लेकर उन्होंने उन्हीं वेदनाओं को व्यक्त करने का सफल और स्तुत्य प्रयत्न किया है, जो सार्वजनीन और सर्वकालीन हैं। मानव-समाज के हृदय में न जाने कब से वही वेदना छिपी हुई है और वही भावनाएँ उठ रही हैं, जो गोपियों को लेकर सूर ने अपने काव्य में व्यक्त की हैं। गोपियों की कथा को समझना सबका काम नहीं है। सूर की तरह दिव्य चक्षुवाले व्यक्ति ही उसे समझ और सफलतापूर्वक व्यक्त भी कर सकते हैं। इस चर्म-चक्षुहीन कवि ने यही किया भी है। गोपी और कृष्ण का सूर-काव्य में वर्णित सम्बन्ध दो दृष्टियों से है—एक तो उसमें साधारण स्त्री-पुरुष के प्रेमपूर्ण आकर्षण, व्यवहार और वेदना का वर्णन है और दूसरे जीव और ईश्वर के बीच के उस आकर्षण का, जिसका अनुभव मानव-हृदय सृष्टि के आदिकाल से करता चला आ रहा है। कहने को कह सकते हैं कि जिस जाति ने यह अनुभव जितनी ही तीव्र मात्रा में किया, संसार में वह उतनी ही सत्य कहलायी है। कवियों को भी यह विषय आदि से ही प्रिय रहा है। कृष्ण-काव्य में आरम्भ से ही इस विषय की प्रधानता है। संस्कृत में भागवत ग्रन्थ की रचना के समय भी यही उद्देश्य कवि का रहा होगा। आगे के संस्कृत-कवि ईश्वर और जीव का सम्बन्ध तो गोपी-कृष्ण की उक्त कथा में धीरे-धीरे भूल गये, केवल स्त्री-पुरुष का पारस्परिक प्रेम, वेदना, विरह आदि लौकिक व्यवहार उनके सामने रह गये। राधा की सृष्टि इसी समय की है। हिन्दी-कवियों में सूरदास की दृष्टि कथा के दोनों अंगों पर थी। उन्होंने गोपी-कृष्ण को लेकर मनुष्य-जीवन के स्त्री-पुरुष-प्रसंग

की ओर संकेत करते हुए जीव और ईश्वर का सम्बन्ध, आकर्षण, व्यवहार और वेदना दिखाने का सफल प्रयत्न किया है। सूर के पश्चात् के रीतिकालीन कवियों की दृष्टि इतनी व्यापक नहीं थी। उन्होंने गोपी-कृष्ण की जीवन-घटनाओं को देखा अवश्य; परन्तु अपनी संकुचित दृष्टि और परिमित लक्ष्य के कारण उन्हें अपना सके स्त्री-पुरुष के साधारण आकर्षण और व्यवहार के रूप में ही। अलौकिक तत्व—जीव-ईश्वर-सम्बन्ध—की ओर उनका ध्यान नहीं जा सका। उनके काव्य में आगे चलकर जो शृंगारिक अश्लीलता आ गयी, उसका कारण केवल उनका संकुचित दृष्टि-कोण ही है।

सूर-काव्य का दूसरा मुख्य विषय कृष्ण का बाल-चरित्र-वर्णन है और तीसरा ईश्वर के प्रति उनकी भक्ति। ये दोनों प्रथम विषय से ही सम्बन्धित हैं। गोपियों के साथ जिस कृष्ण का पति-रूप में सम्बन्ध दिखाना कवि को अभीष्ट है, उसके बाल-रूप और बाल-स्वभाव का वर्णन करके कवि आरम्भ से ही मनुष्य मात्र को उनपर मुग्ध कर लेना चाहता है। कृष्ण का बाल-रूप और बाल-लीलाएँ माता-पिता को तो मुग्ध करती ही हैं, गाँव के अन्य व्यक्ति भी उन पर मुग्ध होते हैं। यहाँ तक कि मार्ग चलते यात्री भी एक बार उन्हें देखना चाहते हैं। यदि ध्यान से देखें, तो ज्ञात होगा कि सूर-काव्य में हमें कृष्ण का लौकिक जीवन-चरित्र ही मिलता है। बालक बनकर वे लीलाएँ करते हैं, युवक होने पर वे प्रेम करते हैं और आवश्यक कार्य से 'परदेश' जाते हैं। कवि की दृष्टि इसके साथ पारलौकिक जीवन की भी ओर चल रही है। वह उन्हें ईश्वर-रूप में भी देखता है, उनकी भक्ति करता है और विनय के गीत गाता है। मनुष्य-मात्र के लिए दोनों विषय शाश्वत हैं। आदि काल से वह बालकों का

मंजुल रूप और मधुर क्रीड़ाएँ देखता चला आ रहा है। प्रेम की रसमय लीलाएँ भी उसने की हैं और अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उसने संसार से विरक्त होकर ईश्वर-भक्ति का गान भी किया है।

सारांश यह दिखाता है कि सूरदास ने भागवत के क्रम का अनुकरण भले ही किया हो, उसकी कथा सुनकर भले ही उन्होंने अपने पदों की रचना आरम्भ की हो; परन्तु वर्णन की विषमता और विषय की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचना के लिए उन्होंने स्वानुभूति से ही काम लिया। हाँ, पौराणिक कहानियों में उनका मन नहीं रमा और उन्हें सुनकर ही उन्होंने पद-बद्ध कर दिया—कविजनोचित स्वतन्त्रता और रचना-कुशलता का इन कथाओं के वर्णन में प्रयोग न करके जैसे उन्हें अपने प्रिय विषय के लिए संचित रखा। उनका राम-कथा-वर्णन भी ऐसा ही है। उसका क्रम वाल्मीकि रामायण से कुछ मिलता-जुलता है। इसके उदाहरण में जनकपुरी से अयोध्या लौटते समय होनेवाली राम-परशुराम-भेंट है। तुलसी के 'मानस' की रचना और प्रचार उस समय अधिक हुआ ही न होगा, तब बेचारे सूर उनका अनुकरण कैसे करते? अतः इस प्रसंग को लेकर तुलसी के 'मानस' का नाम रखना हम अनुचित ही समझते हैं।

'सूरसागर' गीतिकाव्य है या महाकाव्य?

'सूरसागर' में कृष्ण की पूरी तो नहीं, परन्तु अधिकांश जीवन-कथा अवश्य मिलती है। क्रमानुसार उन्हें इस प्रकार सजा भी दिया गया है कि उनके पढ़ने से कथानक का साधारण परिचय मिल जाय। ऐसी दशा में प्रश्न हो सकता है कि 'सूरसागर' को गीतिकाव्य कैसे माना जाय? यह ठीक है कि कृष्ण के व्रज-

निवास की अधिकांश घटनाओं के संबंध में पद हमें 'सूरसागर' में मिलते हैं ; परन्तु यह भी ठीक है कि अन्य गीतिकाव्यों के रचयिताओं की भाँति सूरदासजी की वृत्ति भी इन विवरणात्मक कथाओं में रमी नहीं है। उनका उद्देश्य कृष्ण की पूरी जीवन-गाथा लिखना था ही नहीं। वे भक्त कवि थे, और भक्ति के आवेश में उन्होंने अपने इष्टदेव की जीवन-लीलाओं के संबंध में पदों की रचना की थी। केवल आवेश में कोई कवि किसी नायक की जीवन-गाथा कह ही नहीं सकता । दूसरे शब्दों में, 'सूरसागर' को गीतिकाव्य मानने का सबसे प्रमुख कारण यह है कि यही बात कवि को इष्ट थी। उसने स्वयं 'सूरसागर' की गीतिकाव्य के रूप में रचना की, यद्यपि उनके गीतों का विषय भावपूर्ण और सरस हृदयोद्‌गारों के साथ-साथ कृष्ण-जीवन की चुनी हुई मनोरंजक, मधुर और सरस लीलाएँ भी हैं । दूसरी बात यह है कि सूरदास अपने उपास्यदेव का संपूर्ण जीवन-चरित्र न लिखकर केवल उन मर्मस्पर्शी और मनोहर घटनाओं का वर्णन करना चाहते थे, जो भक्तों के काम की हों। यही कारण है कि बालकृष्ण द्वारा अनेक राक्षसों का वध उन्होंने एक ही पद में कर दिया है—किसी से उनके पूर्ण युद्ध का विस्तृत वर्णन नहीं किया, क्योंकि भक्तों के लिए 'राक्षस किस तरह मारा गया' जानने की अपेक्षा केवल इतना जानना पर्याप्त है कि उनके इष्टदेव में राक्षसों को मारने की शक्ति है और उन्होंने दुष्टों का संहार किया है। तीसरी बात यह है कि कृष्णजीवन का पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास 'सूरसागर' में नहीं मिलता। फलतः अनेक स्थानों पर वर्णन की विषमता मिलती है। महाकाव्यकार में यह प्रवृत्ति नहीं होती। अतः 'सूरसागर' को हम गीतिकाव्य ही मान सकते हैं, जिसमें तत्संबंधी सभी विशेषताएँ प्रचुर मात्रा में वर्तमान हैं ।

आलोचना

'सूरकाव्य' की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि काव्य, प्रेम और संगीत तीनों विस्तृत, गहन और मानव-हृदय से आदिकाल से संबंधित प्रिय विषयों के प्रेमियों की उससे मधुर तृप्ति होती है। काव्य के प्रेमियों के लिए 'सूरसागर' कला की किसी भी उच्चकोटि की कृति-सा आनन्ददायक है। प्रेम और वात्सल्य के अंग-प्रत्यंग का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन प्रेमियों और सहृदयों का हृदय हर लेता है। साथ ही सरल जीवन का सहज स्वाभाविक प्रभाव भी हमें उसमें मिलता है। सारांश यह है कि हिन्दी-साहित्य में 'सूरसागर' एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसकी समता एक रत्नाकर से की जा सकती है। उसका एक-एक पद रत्न की भाँति बहुमूल्य है। कुछ पद साधारण भी हैं; परन्तु इनसे सूर के अनुपम रत्नाकर की महिमा नहीं घटती। अभी इस रत्नाकर के अमूल्य रत्नों के पारखी कम हैं। अधिकांश ने केवल रत्नाकर का नाम सुनकर ही प्रशंसा के पुल बाँध दिये हैं। जिस दिन इसके सच्चे रत्नों का उचित मूल्य आँका जायगा, उस दिन सूर का स्थान विश्व-साहित्य में बहुत ऊँचा होगा।



भ्रमरगीत-प्रसंग

काव्य का विषय कथा के मार्मिक स्थल होते हैं। गीत-काव्य अथवा मुक्तक छंदों के रचयिता को तो मार्मिक स्थलों का चयन करने में विशेष सतर्क रहना ही पड़ता है; प्रबंध-काव्यकार की प्रतिभा की परख, कला की कुशलता, वर्णन का चमत्कार और उसकी सहृदयता का परिचय भी इन्हीं स्थलों पर मिलता है। आशय यह कि गीत-काव्य के कवि के लिए ये स्थल मनोरम वाटिका के रम्य जलाशय और सुन्दर सरोवर हैं, तो प्रबंध-काव्यकार के लिये विस्तृत और विविध गति से प्रवाहित काव्य-धारा के तटवर्ती नैसर्गिक छटावाले हृदयहारी कुंज हैं, तो कहीं मानवी वास्तु-कला के विकास के परिचायक मनोहर शोभावाले घाट और निकटवर्ती मंदिर। कुंजों और घाटों-मंदिरों का अस्तित्व जल-धारा से भिन्न होते हुए भी उससे घनिष्ठ संबंध रखता है। कुंजों की मनोहरता और रमणीकता का मूल कारण तो उसको सींचने-वाली धारा है ही, घाटों-मंदिरों को भी यह ऐसी शोभा प्रदान करती है, जो धारा के समीप न होने पर उनमें आ ही नहीं सकती। सौंदर्य का उपासक मनुष्य का मन इन रमणीक स्थलों को देखकर मुग्ध हो जाता है। अतः जिस धारा के तट पर ऐसे स्थलों की संख्या जितनी अधिक होगी, मानव-जाति उसका उतना ही अधिक सम्मान करेगी। इसीसे कवि उसी कथा-धारा को अपनाने का सर्वदा प्रयत्न करते हैं, जिसमें उन्हें अधिक-अधिक मार्मिक और प्रभावोत्पादक स्थल मिल सकें। कृष्ण-कथा में ऐसे स्थलों की संख्या बहुत अधिक है। पौराणिक कथाओं को अपने

काव्य का विषय बनानेवाले कवियों में कृष्ण-काव्य-धारा के कवियों की अपरिमित संख्या होने का यही कारण है।

कृष्ण-कथा में सबसे मार्मिक स्थल उनका अपनी किशोरावस्था में जन्मभूमि छोड़कर मथुरा जाना है। इस अप्रिय घटना से व्रज में सर्वत्र शोक छा जाता है। अपने प्रिय पुत्र के भावी जीवन के संबंध में माता-पिता के हृदयों में न जाने कितनी कोमल और मधुर आशाएँ थीं। अपने प्रिय सहचर को लेकर व्रज के गोप और गोपियाँ न जाने कितने मनोहर सुख-स्वप्न देखा करते थे। अपने प्रिय राजकुमार की भावी उन्नति के विषय में व्रज के समस्त निवासी न जाने कितनी लुभावनी कल्पनाएँ किया करते थे। इस अचानक वज्रपात ने माता-पिता की कोमल और मधुर आशाओं, गोप-गोपियों के मनोहर सुख-स्वप्नों और व्रजवासियों की लुभावनी कल्पनाओं का अन्त कर दिया। कृष्ण व्रज-सरिता के जल थे, व्रज-शरीर के प्राण थे। उनके मथुरा जाते ही व्रज की दशा जल-हीन सरिता और प्राणहीन शरीर-सी हो गयी। व्रज की समस्त शोभा, व्रज की समस्त श्री, व्रज का समस्त सुख और व्रज के समस्त सुखों का साधन नष्ट हो गया और विवशता की हथकड़ी और बेड़ी में जकड़े व्रजवासी खड़े अपनी आँखों से यह सब देखते रहे। किसी भी देश की किसी भी भूमि ने कदाचित ऐसा सुन्दर, मूल्यवान और सुखद रत्न कभी न खोया होगा; 'प्रियप्रवास' का कवि कहता है—

धाता द्वारा सृजित जग में हो धरा बीच आके।
पाके खोये रतन कितने प्राणियों ने अनेकों॥
जैसा प्यारा रतन व्रज ने हाथ से आज खोया।
पाके ऐसा रतन अबलौं है न खोया किसी ने॥ ५। ८०॥

ऐसा अमूल्य रत्न खोकर व्रज में निराशा की जो रात आयी,

उसका फिर अन्त ही न हुआ ; व्रजवासियों का आशा-रवि जो एक बार अस्त हुआ, तो फिर उदय ही न हुआ। माता-पिता के, गोप-गोपियों के, नगर-निवासियों के जीवन के शेष दिन रोते बीते, परंतु उनके दिन फिर न फिरे—

व्रज-धरा-जन के उर आज जो;
विरह-जात लगी यह कालिमा।
तनिक धो न सका उसको कभी
नयन का बहु - बारि - प्रवाह भी ॥२।६३॥
सुखद ये बहु जो जन के लिए
फिर नहीं व्रज वे दिन भी फिरे।
मलिनता न समुज्ज्वलता हुई
दुख-निशा न हुई सुख की निशा ॥२।६४॥

कृष्ण-कथा का सबसे मार्मिक स्थल यही है। हिंदी कवियों ने जिस क्षण से अपने कृष्ण-कथा को अपने काव्य का विषय बनाया, उसी क्षण से उनकी दृष्टि उसके इस मार्मिक स्थल पर पड़ी। कथा के इस अङ्ग से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कृष्ण की जीवनगाथा का वर्णन किया चाहे न किया, इस विषय पर काव्य-रचना करना वे न भूले—कृष्ण-काव्य-धारा के अनेक कवियों का तो यही प्रिय विषय हो गया। यह कथा श्रीमद्भागवत के ४६ वें और ४७ वें अध्याय में मिलती है। हिंदी में इस विषय की रचना सबसे पहले महात्मा सूरदास ने की। वल्लभ-संप्रदाय में भागवत का महत्व बहुत अधिक था। स्वयं महाप्रभु वल्लभाचार्य नित्यप्रति उसका पारायण किया करते थे। 'चौरासीवार्ता' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि महाप्रभु ने ही अपने प्रिय शिष्य सूरदास को, उसकी कवि-प्रतिभा से परिचित होकर भागवत की कथा और उसका रहस्य समझा दिया था। इसके

पश्चात् कवि ने 'सूरसागर' के सर्वश्रेष्ठ अंश 'भ्रमरगीत' की रचना में हाथ लगाया।

सूरदास के अतिरिक्त अनेक हिंदी कवियों ने इस विषय को लेकर सुन्दर काव्यों की रचना की। इनमें कुछ के नाम ये हैं— नंददास, हितवृन्दावनदास, प्रागन कवि, बकसी हंसराज ; रीवाँ-नरेश रघुराजसिंह, सत्यनारायण, श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय और श्री जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'। सूरदास की रचना इन सभी कवियों से परिमाण में अधिक तथा कला और भावपक्ष की दृष्टि से सुन्दर है।



सिद्धांत और महत्व

'भ्रमरगीत' के ऊधव-गोपी-संवाद में हमें सूर-सिद्धांत की झलक मिलती है। हम देखते हैं कि निर्गुण ब्रह्म की ज्ञानसापेक्ष-साधना की अपेक्षा सूरदास प्रेम-परक साकार उपासना को श्रेष्ठ समझते ह। मतिमान अध्ययनशील प्रकृतिवाले व्यक्तियों के मन में जो द्वंद्व होता है, उसकी मनोवैज्ञानिक विवेचना हमें 'भ्रमरगीत' में मिलती है। सूर के समय में विभिन्न संप्रदाय धर्म-विषयक नये-नये सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे। कोई 'अहं ब्रह्मास्मि' के मनमाने अर्थ लगा रहा था, कोई 'अलख-अलख' चिल्लाता फिरता था, तो कोई अंधविश्वास और पाखंड का ही प्रचारक बना हुआ था। ऐसे लोगों को तुलसीदास ने कई बार फटकारा है। समाज में बढ़ती हुई इस धार्मिक उच्छृं-खलता को रोकने के लिए सूरदास ने दूसरे मार्ग का अवलंबन किया। उन्होंने ज्ञानवाद, अद्वैतवाद आदि के प्रचारकों का खंड-नात्मक विरोध न करके यह अच्छा समझा कि जनता को स्वयं अपने लिए मार्ग निर्धारित करने का अवसर दिया जाय। ऊधव के विचार-परिवर्तन द्वारा उन्होंने जैसे संकेत किया है कि साधारण जनता निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना नहीं करना चाहती; अपनी भलाई के लिए उसे ऐसा ब्रह्म चाहिए, जो साकार हो, सर्वगुण-संपन्न हो और जिसके पास ऐसा प्रेमी हृदय हो, जो प्रेम के प्रत्युत्तर में प्रेम भी कर सके। कृष्ण उनकी दृष्टि में शील और सौंदर्य के ऐसे ही निधान थे। वे प्रेम के प्रतीक हैं और मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षियों तक से प्रेम करनेवाले हैं। अतः गोपियों की तरह उनसे तन-मन से भक्ति करना सूर का मूल सिद्धांत जान

पड़ता है। ऐसे कृष्ण के प्रेम में लीन हो जाने पर मनुष्य को गोपियों की तरह केवल कृष्ण का ही ध्यान रह जाता है; सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देने लगते हैं। ज्यों-ज्यों मनुष्य इस स्थिति की ओर अग्रसर होता जाता है—कृष्ण के प्रति उसकी प्रीति और लगन तीव्रतर होती जाती है, त्यों-त्यों वह संसार के बंधनों से मुक्त होता जाता है—कम-से-कम संसार की वासना और तज्जन्य भौतिक सुख-कामना से उसका चित्त अवश्य हट जाता है। योग, ज्ञान और कर्मकांड, तीनों का उद्देश्य स्थूल रूप से अपने मन को इसी स्थिति में पहुँचाना है; केवल इनके मार्ग भिन्न हैं। भक्ति और प्रेम द्वारा जब सरलता से मनुष्य इस स्थिति में पहुँच सकता है—'सर्वत्र सर्वदा ब्रह्म की अनन्यता का अनुभव' कर सकता है—तब योग की कष्टसाध्य साधना और कर्म का अप्रिय झंझट और कष्ट क्यों सहा जाय? साधारण जनता के लिए इन्हें असाध्य समझकर ही निर्गुण और निराकार ब्रह्म की उपासना को स्वीकार करते हुए भी सूरदास ने उसे नीरस और अग्राह्य प्रमाणित किया है। उनकी सम्मति में सगुण भक्ति ही अपेक्षाकृत सुलभ और हृदयग्राही है।

उक्त कथन से यह न समझना चाहिए कि सूरदास निर्गुण ब्रह्म अथवा उसकी उपासना के विरोधी थे। वास्तव में योग और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति और प्रीति की महत्ता सिद्ध करने से सूर का उद्देश्य केवल इतना था कि जनता के लिए ये सरल, सरस और साध्य हैं। सिद्धांत-रूप में उन्होंने ज्ञान और योग के विरोध करने की चेष्टा कहीं नहीं की है।

निर्गुणोपासना सरल नहीं होती। जिस ईश्वर का कोई रूप, कोई रंग, कोई गुण नहीं है, जो अज्ञेय होने के साथ-साथ शून्य ही है, उसकी उपासना कैसे की जा सकती है? निर्गुण और

निराकारोपासना के प्रचारकों ने स्वयं इस कठिनाई का अनुभव किया है। फलस्वरूप अपने निर्गुण ब्रह्म में उन्हें सगुण के गुणों को स्वीकार करना पड़ा है। कबीर की कविता में यह बात स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। 'भ्रमरगीत' में सूर ने निर्गुणोपासना का जो विरोध किया है उसका कारण यही है। उन्होंने 'सूरसागर' के आरंभ में ही लिखा है—

अबिगत-गति कछु कहत न आवै।
ज्यौं गूँगैं मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै।
परम स्वाद सबही सु निरंतर अमित तोष उपजावै।
मन बानी कौ अगम-अगोचर, सो जानै जो पावै।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति बिनु निरालंब कित धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै।

तात्पर्य यह कि अज्ञेय के विषय में मनुष्य वैसे ही कुछ नहीं कह पाता, जैसे गूँगा मीठे फल का आनंद केवल अनुभव करके रह जाता है, प्रकट नहीं कर पाता। जो निर्गुण ब्रह्म असीम आनंद देता है, जो मन के लिए अगम है तथा जिसके विषय में वाणी भी कुछ नहीं कह पाती, उसको इस संसार में केवल वे ही जानते हैं, जिन्होंने उसे पा लिया है, उसका सान्निध्य प्राप्त कर लिया है। साधारणत: मानव का मन ब्रह्म के रूप, रंग, गुण, सम्बन्ध, स्वभाव आदि के विषय में कुछ परिचय अथवा संकेतात्मक आधार न पाकर घबड़ा जाता है; वह उसे अगम समझ बैठता है। इसी से सूर ईश्वर को सगुण मानकर, उन लीलाओं का वर्णन करते हैं जो उसने सगुण रूप में की थीं।

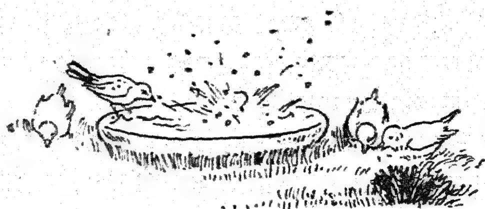
उक्त पद से स्पष्ट है कि सूर निर्गुण ब्रह्म पर अविश्वास तो नहीं करते थे, पर उसे जन-साधारण के लिए अगम अवश्य समझते थे। इसी से उन्होंने निर्गुण और निराकारोपासना का उपदेश

देनेवाले ऊधव को सगुण रूप की भक्ति करनेवाली गोपियों द्वारा पराजित कराया है।

वैष्णवों का मत है कि जीवात्मा की उत्कट अभिलाषा परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करने की रहती है। वह आत्म-समर्पण करके ईश्वर-संयोग-सुख प्राप्त करना चाहती है। जीव और परमात्मा के बीच में माया का आवरण है। इसके हटने पर ही ईश्वर से संयोगात्मक साक्षात्कार हो सकता है। परन्तु वैष्णव भक्त इससे संतुष्ट नहीं होता; अद्वैतवादियों की तरह वह परमात्मा के साथ एकीभूत होने की आकांक्षा नहीं करता। उसकी दृष्टि में ईश्वर पूर्ण चैतन्य है; जीव भी चैतन्य है; परन्तु अज्ञान और माया के कारण परमात्मा से उसका साक्षात्कार नहीं होता। वैष्णव भक्त की कामना रहती है कि माया का यह आवरण तो ज्यों-का-त्यों बना रहे—ईश्वर और जीव अपने-अपने रूपों में रहें—और तब वह शुद्ध चैतन्य ईश्वर के साक्षात्कार की आनंदानुभूति में मग्न हो जाय। ज्ञानी और योगी को इस आनंदानुभूति के लिए प्रयत्न करना पड़ता है; परंतु भक्त सहज ही इसमें तल्लीन हो जाता है। सहज, सुलभ सुख के राजमार्ग पर न चलकर ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों पर चलना सूर को अनुचित ही प्रतीत होता है और यह ठीक भी है।

'भ्रमरगीत' काव्यकला की दृष्टि से 'सूरसागर' का सर्वश्रेष्ठ अंश है। उसे हम कवि की रचनात्मक प्रतिभा की सर्वोत्तम देन कह सकते हैं। इसमें करुण रस की अपूर्व रसधार प्रवाहित है। भक्तों के लिए 'भ्रमरगीत' का मूल्य उसमें प्रतिपादित कवि के भक्ति और प्रेम-संबंधी सिद्धांतों के कारण है। काव्य-प्रेमियों और रसिकों के लिए इसका विरह-वर्णन और इसकी चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ बड़े मूल्य की हैं। सृष्टि के आदि से ही नर-नारियों में

परस्पर एक नैसर्गिक आकर्षण रहा है। अवस्था-विशेष पर पहुँच कर पुरुष स्त्री की और स्त्री पुरुष की ओर आकर्षित होने लगती है। इस प्रबल आवेग पर नियंत्रण करना एक असंभव-सी बात है और अस्वाभाविक भी। सूरदास इसे समझते थे। कौमार्यावस्था साथ-साथ बितानेवाली गोपियाँ कृष्ण से और कृष्ण गोपियों से प्रेम करने लगते हैं। 'भ्रमरगीत' में कवि ने इस प्रेमपूर्ण प्रबल आकर्षण का अत्यंत स्वाभाविक और सुन्दर चित्र खींचा है। इस चित्रण में सूरदास ने बड़ी कुशलता दिखलाई है। नायक-नायिका का बाह्य सौंदर्य पारस्परिक प्रीति का प्रथम कारण होता है। सूर ने इसका वर्णन सविस्तर किया है। प्रीति के पश्चात् मिलन की उत्सुकता और विरह में संयोग की उत्कंठा आदि आवेगपूर्ण मनोभावों की विवेचना भी सूर ने बड़ी निपुणता से की है। इन्हीं सब कारणों से 'भ्रमरगीत' हिंदी साहित्य का सुन्दर और बहुमूल्य रत्न समझा जाता है।



भाषा

सूर-काव्य की रचना सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक हो चुकी थी, परंतु अभी न तो 'सूरसागर' की ही कोई प्रति १७४१ ईसवी के पहले की प्राप्त हो सकी है और न किसी अन्य ग्रंथ की ही। ऐसी दशा में सूर की भाषा के संबंध में निश्चयपूर्वक कुछ कहना कठिन ही है। फिर भी यदि हम सूर-काव्य के वर्तमान उपलब्ध संस्करणों को सोलहवीं शताब्दी का ही मान लें, तो हमें कहना पड़ता है कि सूर के पहले यद्यपि हिंदी के अनेक प्रसिद्ध कवि और महात्मा अपनी अमर वाणियाँ सुना चुके थे और जनता पर उनकी कविता का पर्याप्त प्रभाव भी पड़ा था, तथापि भाषा की दृष्टि से उनकी रचनाओं का वह सम्मान नहीं हुआ, जो सूर की कविता का हो रहा है। यह ठीक है कि आगे चलकर अनेक कवियों ने सूर की भाषा से मधुर, कोमल, संस्कृत और साहित्यिक व्रजभाषा में कविता की; परंतु सूर की महत्ता इसमें है कि उन्हें अपने प्रारंभिक प्रयास में ही अद्वितीय सफलता मिली। साधारण व्रजभाषा को साहित्यिक रूप देने का सर्वप्रथम सराहनीय प्रयत्न उन्होंने ही किया था। उनके पहले की प्रचलित व्रजभाषा के नमूने केवल चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवों की 'वार्ताओं' में मिलते हैं। ये ग्रंथ स्वांत:-सुखाय न रचे जाकर उद्देश्य-विशेष से—धर्म प्रचार और कीर्ति-गान के लिए—साधारण बोलचाल की भाषा में लिखे गये थे। अत: इस भाषा का परिष्कार करने और इसे काव्योपयोगी बनाने की आवश्यकता थी। यह कार्य सूर ने बड़ी कुशलता से सम्पन्न किया।

सूरदास की भाषा की विशेष आलोचना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि व्रजभाषा के प्रारंभिक विकास के समय

ही सूर का प्रादुर्भाव हुआ था। फलतः उनकी कविता की ब्रजभाषा उसी प्रदेश की चलती भाषा है, जो कृष्ण की बाल-लीलाओं के कारण कृष्ण-भक्तों के लिए तीर्थस्थान है। सूरदास के प्रयोग की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने संस्कृत शब्दों का सुन्दर प्रयोग करके अपनी भाषा को साहित्यिक बना दिया है। यह साहित्यिक पुट उनकी भाषा को परिष्कृत करने में तो पूर्ण सहायक हुआ है, परंतु उससे क्लिष्टता नहीं आती। कारण यह है कि संस्कृत के शब्द अपनाने पर भी वे अपनी भाषा को लंबे-लंबे समासांत पदों से सर्वत्र बचाते रहे हैं। फलस्वरूप सूर की भाषा गेय पदों के उपयुक्त हो सकी है।

ओज, माधुर्य और प्रसाद, तीनों गुणों में अंतिम दो सूर-काव्य में प्रायः सर्वत्र मिलते हैं। सूरदास का शृंगार, वात्सल्य और शांत रसों से संबंधित विषय और शैली ही ऐसी है कि इन दोनों गुणों का सुन्दर समावेश और प्रथम का पूर्ण अभाव आवश्यक हो जाता है। ओज गुण के अभाव के लिए हम कवि को दोष नहीं दे सकते, क्योंकि इसमें विषय और रुचि का प्रश्न है, परंतु माधुर्य और प्रसाद गुण की प्रधानता हम सूर की भाषा की विशेषता ही समझते हैं। कृत्रिमता के वातावरण से दूर रहनेवाले सूर की भाषा में सरलता और स्वाभाविकता होना आश्चर्य नहीं है। कवि सूर की शब्द-योजना की दूसरी विशेषता यह है कि कहीं-कहीं उनका एक-एक शब्द पूरे चित्र का-सा आनंद देता है। तीसरी बात यह कि उनकी भाषा प्रायः सदैव ही भावों के अनुरूप मिलती है। कहीं-कहीं तो उनकी शब्दावली से वही ध्वनि निकलती है, ज़िसका वर्णन करना उन्हें इष्ट है। उदाहरण के लिए निम्नलिखित पंक्तियों में बालकों के 'कलबल' बोल सुनाई पड़ रहे हैं—

(१) अटपटाइ कलबल करि बोलत ।
(२) अल्प दसनि कलबल करि बोलनि ।

सूर की भाषा की चौथी विशेषता है उसकी सजीवता । इसके लिए कवि ने बोलचाल के शब्दों का प्रयोग किया है। देखिये, नीचे की पंक्ति में 'खेप' शब्द से कैसी स्वाभाविकता आ गयी है—

लादि खेप गुनग्यान जोग की ब्रज में आय उतारी ।

अपनी भाषा में सजीवता लाने के लिए सूरदास ने प्रचलित मुहावरों और कहावतों का भी प्रयोग किया है। इनसे एक ओर तो भाषा में स्वाभाविकता आ गयी है और दूसरी ओर चमत्कारपूर्ण मनोहरता । दो-चार मुहावरों का प्रयोग देखिए—

(१) तैलक वृष ज्यों भ्रम्यो भ्रमहिं भ्रम भज्यो न सारंगपानि ।
(तेली के बैल की तरह घूमना)

(२) जाको मनमोहन अंग करै।
ताको केस खसै नहिं सिर तें जो जग बैर परै !
(आशय बाल बाँका न होने से है)

(३) कत पट पर गोता मारत हौ निरे भड़ के खेत !
(व्यर्थ बालू में गोता लगाना)

(४) मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पर आवै ।
(आशय 'मरता क्या न करता' से है)

(५) खेलन अब मेरी जाय बलैया ।

इसी प्रकार अनेक कहावतों का प्रयोग भी हमें सूर-काव्य में मिलता है। उदाहरण के लिए—

(१) झूँठो खैए मीठे कारन ।

(२) स्वान पूँछ कोटिक जो लागै सुधि न काहू करी।

(३) जीवन मुँह चाही को नीको।

अब भाषा की विशुद्धता का प्रश्न आता है। यदि 'विशुद्ध ब्रजभाषा' का अर्थ संस्कृत शब्दों के प्रयोग और साहित्यिकता की छाप से लिया जाय, तो हम सूर की भाषा को किसी सीमा तक विशुद्ध मान सकते हैं; परंतु यदि इसका तात्पर्य अन्य भाषाओं—हिंदी की उपभाषाओं या विदेशी भाषाओं—के शब्दों के अपनाने से समझा जाय, तो सूर की भाषा अत्यंत शुद्ध नहीं कही जा सकती। उसमें कहीं तो ब्रजभाषा के प्राचीन प्रयोग मिलते हैं, तो कहीं लरिक, सलोरी, छाक, सथिया चीतत, पतूखी, भूड़, पाखे, लँगरई जैसे गँवारू शब्द। मोर, तोर, कीन, इहवाँ, उहवाँ, हमार जैसे पूरबी शब्दों के साथ-साथ, गुजराती के बियो, पंजाबी के प्यारी, बुन्देलखण्डी के गहिबी, सहिबी तथा राजस्थानी के भी एक-आध शब्द यत्र-तत्र मिलते हैं। अरबी-फारसी के शब्दों की अधिकता उनके दो-एक पदों में ही है। अपने अन्य पदों में भी सूरदास ने अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग अवश्य किया है, परन्तु संयत रूप में ही। इससे कवि की भाषा में स्वाभाविकता आ गई है। कुछ विदेशी शब्दों को तो उन्होंने संस्कार करके अपना भी बना लिया है। तरताजा (तरोताजा से), मसकत (मशक्कत से) आदि ऐसे ही पद हैं, जिनकी शुद्धि सूरदास ने की है। विदेशी भाषाओं को अपना बना लेना सदैव ही जनता का प्रयत्न होता है, भाषा-विज्ञान के विद्यार्थी यह बात जानते हैं। सूरदास का उक्त प्रयत्न भी इसी प्रकार का है। आज विदेशी शब्दों को अपना बना लेने और अपनी ही भाषा से उन्हें शासित करने की प्रवृत्ति बहुत बढ़ रही है। इस दृष्टि से भी सूरदास का प्रयत्न सराहनीय समझा जायगा।

सूरदास की भाषा के सम्बन्ध में मुख्यतः चार प्रकार के दोष बताये जाते हैं। पहली बात यह है कि उन्होंने शब्दों को इस प्रकार तोड़ा-मरोड़ा है कि उनका स्वाभाविक रूप विकृत हो गया है ; साधारणतः वे पहचाने भी नहीं जाते। उदाहरण के लिए यह पंक्ति देखिए—

तारि दै दै ग्वालबालक किय जमुन तट गैन।

इस पंक्ति में गैन शब्द क्रमशः गमन (गवन, गैन) से इस तरह बनाया गया है कि पहचाना नहीं जाता। इसी प्रकार रहत, जितेक और पानी के लिए राहत, जितेक और पान्यौ आदि शब्दों का भी उन्होंने प्रयोग किया है और ऐसे शब्द पंक्ति के अन्त में तुक मिलाने के लिए ही नहीं रखे गये हैं, पंक्ति के बीच में भी यत्र-तत्र मिलते हैं। इस संबंध में हमें यह कहना है कि ऐसे स्थल बहुत कम हैं, जहाँ शब्द पहचाने ही न जा सकें और दो-एक स्थलों पर प्रयुक्त शब्दों को छोड़कर जहाँ कहीं भी सूरदास को आवश्यकता पड़ी है, उन्होंने शब्दों में स्थिति के अनुसार साधारण परिवर्तन भी किया है। इसके लिए उनकी भाषा पर कोई दोष नहीं लगाया जा सकता। उनके पहले और बाद के सभी कवियों की रचनाओं में ऐसे स्थल मिलते हैं, जहाँ शब्दों को तोड़ने-मरोड़ने की स्वतंत्रता का पूर्ण उपयोग किया गया है। सूरदास भी कवि थे। अपने जन्मसिद्ध अधिकार से फिर वे क्यों वंचित रहते ? पर साथ ही, मर्यादा का भी उन्होंने उचित ध्यान रखा है। नीचे की पंक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

(१) सूरदास कछु कहति न आवै गिरा भई अति पंग। (पंगु)
(२) श्री संकर बहु रतन त्यागि कै विषहि कंठ लपटेय। (लपटाना)
(३) कबहुँ चितै प्रतिबिंब खंभ में लवनी लिए खवावत। (नवनीत)

(४) कनक खंभ प्रतिबिंबित सिसु इक लौनी ताहि खवावहुँ ।
(नवनीत)

(५) राम नाम बिनु क्यों छूटोगे चंद गहे ज्यों केत । (केतु)

(६) 'सूरदास' प्रभु तुमरे दरस को चरनन की बलि गैया । (गया)

(७) रच्यो जग्य रस रास राजसू वृन्दा बिपिन निकेत । (राजसूय)

इन उदाहरणों के देखने से मालूम होता है कि पंक्ति के मध्य में मात्राओं के घटने-बढ़ने या अंत में तुक मिलाने के लिए सूरदास ने शब्दों को यदि तोड़ा-मरोड़ा भी है, तो इस बात का ध्यान रखा है कि उनका रूप इतना विकृत न होने पाये कि उनके मूल का कुछ पता ही न चले।

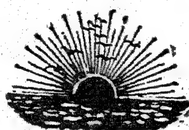
सूर की भाषा में दूसरा दोष शिथिलता-संबंधी लगाया जाता है। मैं समझता हूँ, सूर के उन्हीं पदों में कुछ शिथिलता मिलती है, जिनमें उन्होंने किसी एक कथा अथवा अनेक कथाओं का चलता वर्णन किया है। पर यह भाषा का दोष नहीं कहा जा सकता। हाँ, जहाँ 'जु', 'सु' आदि शब्दों का कवि के लिए मात्रा-पूर्ति-हेतु आवश्यक, परंतु समालोचक की दृष्टि में अनावश्यक प्रयोग किया गया है, वहाँ कुछ अवश्य खटकता है।

तीसरा दोष सूर के कुछ प्रयोगों का व्याकरण-सम्मत न होना है। लिंग-संबंधी कुछ अशुद्धियाँ भी मिलती हैं। एक ही शब्द यथा 'सूल' कहीं स्त्रीलिंग होकर प्रयुक्त हुआ है, कहीं पुल्लिंग। हम समझते हैं, सूर के ग्रंथों की मूल प्रति न मिलने तक यह दोष प्रतिलिपिकारों का ही समझना चाहिए। दो भिन्न-भिन्न प्रतियों के गेय पदों में इस प्रकार का परिवर्तन हो जाना तो बहुत साधारण-सी बात है।

चौथी बात सूर के कूट पदों और दृष्टकूटों से संबंध रखती है। इनके देखने से जान पड़ता है कि सूरदास को शब्दों से खेलने

का भी शौक था। यही कारण है कि कहीं-कहीं उन्होंने 'द्राविड़-प्राणायाम' करके कुछ शब्दों का प्रयोग किया है। 'साहित्यलहरी' में इसके अनेक उदाहरण मिलते हैं। यही नहीं, उन्होंने कुछ शब्दों का नये अर्थों में प्रयोग किया है, जो साधारण रूप से देखने पर विचित्र लगते हैं।

सारांश यह कि उनकी अनुप्रास-रहित मधुर भाषा स्वाभाविक होते हुए भी साहित्यिक है। तुलसी की सुव्यवस्थित भाषा के समान प्रौढ़ता उसमें भले ही न हो, पर यह मानना पड़ेगा कि सूर की ब्रजभाषा में मधुरता भी है और स्पष्टता भी। स्थल-विशेष अथवा पद-विशेष की बात जाने दीजिए, यों साधारणतः उनकी भाषा प्रायः सर्वत्र ही स्वाभाविक और सरल है। यह ठीक है कि शुद्धता की दृष्टि से वह रसखान और घनानंद की भाषा के समान नहीं, परंतु यह भी सत्य है कि उसमें शब्दों का वह खिलवाड़ नहीं मिलता, जिसके लिए रीतिकालीन कवि बदनाम हैं। वास्तव में सूर के लिए यह बड़े महत्व की बात है कि उन्होंने साधारण बोलचाल की भाषा को अत्यंत उच्च साहित्यक पद-प्रदान किया। आगे चलकर अन्य कवियों ने ब्रजभाषा का जो महल तैयार किया, उसकी नींव रखने का श्रेय सूरदास को ही दिया जाना चाहिए।



शैली

सूरदास ने प्राय: गेय पद ही रचे हैं। उनके प्रत्येक पद में स्वतंत्र परिच्छेद की तरह एक ही भाव का विकास दिखाया गया है। मुख्य भाव से सम्बन्धित अन्य अप्रधान विषयों की ओर भी उन्होंने एक ही पद में संकेत किया है और साथ ही विषयांतर न होने पाये, इसका भी पूर्ण ध्यान रहा है। कवि की दृष्टि इन पदों की रचना करते समय कथानक अथवा जीवन-घटनाओं का वर्णन करने की ओर उतनी नहीं है, जितनी उन घटनाओं के मूल रूप अथवा प्रेरक भावों और मनोविकारों की ओर है। यद्यपि कुछ पदों में वर्णन की प्रधानता भी मिलती है, तथापि कवि की वृत्ति ऐसे स्थलों पर विशेष रमी नहीं है। अत: ऐसे पदों को हम कवि की शैली का प्रतिनिधि नहीं मान सकते। इसके विपरीत, जिन पदों में हृदय के आंतरिक भावों और सच्चे हृदयोद्गारों का वर्णन है, वे काव्य की दृष्टि से बड़े सुन्दर हैं। ऐसे एक ही पद से हमें कवि के काव्य-कौशल का पता लग जाता है।

सूर का मुक्तक पदों में रचना करना तत्कालीन परिस्थिति का प्रभाव-जन्य जान पड़ता है। कारण यह कि गीत-काव्य की जो शैली उन्होंने अपनायी, वह जयदेव और विद्यापति की है। यह भी संभव है कि गेय और मुक्तक पदों की रचना उन्होंने स्वयं गाने के ही लिए की हो। इस शैली की मुख्य विशेषता यह है कि विभिन्न राग-रागनियों में पदों की रचना करके अपने काव्य में उन्होंने अनुपम मधुरता भर दी है। संगीत की मृदु-मधुर-ध्वनि के कारण सूर के पद अत्यंत ललित हैं और इनसे ज्ञात होता है कि सूर का संगीत सम्वन्धी ज्ञान कितना बढ़ा-चढ़ा था। इस सम्बन्ध में

यह कथन यथार्थ ही है कि सूर ने कोई ऐसी राग-रागिनी नहीं छोड़ी, जिस पर उनके दो-चार पद न मिलते हों। सूर-काव्य के संगीत-प्रेमियों का भी कहना है कि जो राग-रागनियाँ सूर-काव्य में मिलती हैं, उनमें से कुछ के लक्षण भी अब प्राप्त नहीं हैं। जान पड़ता है कि या तो सूर के समय में कुछ राग-रागनियाँ ऐसी प्रचलित थीं, जो अब अप्रचलित हैं अथवा इस समय उनका नाम बदल गया है। यह भी हो सकता है कि प्रकृत गायक सूर ने ही उन राग-रागनियों की सृष्टि की हो। जो हो, इतना निश्चित है कि जितने गेय पदों की सूर ने रचना की है, उतने हिन्दी और कदाचित् संसार की किसी भी उन्नत भाषा में एक कवि की रचना के रूप में उपलब्ध नहीं हैं। काव्य और संगीत के इस सुन्दर समन्वय, मणि-कांचन के इस अनुपम संयोग के कारण सूर एक ओर तो महाकवि माने जाते हैं और दूसरी ओर संगीतज्ञ। फलत: सूर-काव्य रसिक और सहृदय काव्य-प्रेमियों के हृदय का हार तो है ही, साथ ही, संगीत-प्रेमियों के भी बड़े काम की चीज है।

सूर-काव्य में प्रयुक्त पदों के संबंध में 'सूरसंदर्भ' (पृ०८-९) में कहा गया है कि इनके अधिकांश छंद मात्रिक हैं। इसलिए मात्राओं की गणना टेकवाली प्रथम पंक्ति को छोड़कर शेष सब पंक्तियों में समान होनी चाहिए। यद्यपि सूरदासजी ने प्राय: सर्वत्र इस नियम का पालन किया है, किंतु कुछ पदों में टेक की दूसरी पंक्ति में चार मात्राएँ अधिक मिल जाती हैं। दूसरी बात यह है कि वर्णिक वृत्तों को भी सूरदासजी ने मात्रिक बनाकर व्यवहार किया है। कवित्त छन्द के कई प्रकार 'सूरसागर' में मिलते हैं; पर शायद ही कहीं अक्षरों की गणना ठीक बैठती हो। कारण यह है कि सूरदासजी ने उन्हें भी मात्रा के आधार पर चलाया है। मात्रा के आधार पर चलाने में उन्होंने एक बड़ी सुविधा देखी थी।

जहाँ-कहीं मात्रा बढ़े, वहाँ उसे ह्रस्व पढ़ लिया जाय। यह स्वातंत्र्य इन्होंने उन छंदों में अधिक बर्ता है, जो मूलत: वर्णिक हैं, किन्तु जिनमें वर्णन की गणना ठीक नहीं बैठती।

हम समझते हैं कि अन्धकवि सूरदास के सम्बन्ध में उक्त विषय को लेकर यह कहना कि वे अमुक बात चाहते थे अमुक नहीं, उनके साथ अन्याय करना है। 'सूरसागर' अथवा सूर के अन्य किसी ग्रंथ की कोई प्रति अभी तक नहीं मिली है और कदाचित् न मिलने की ही संभावना है, जो स्वयं कवि के हाथ की लिखी कही जा सके। ऐसी दशा में मात्राओं के घटाने-बढ़ाने का कार्य ग्रंथों की प्रतिलिपि करनेवालों का ही समझना चाहिये। स्वर्गीय रत्नाकरजी ने सूरसागर का संपादन करते समय बढ़ी हुई मात्राओं को प्रक्षिप्त माना भी था। सूर के पदों को इसी दृष्टि से देखना होगा। स्थान अथवा पद-विशेष में यदि परिवर्तन करने की आवश्यकता भी हो, तो काव्य-ज्ञान के साथ संगीत-शास्त्रविज्ञ व्यक्तियों द्वारा ही ऐसा होना चाहिए। अस्तु।

वर्णन-शैली की दृष्टि से सूरदास की पदावली कहीं तो बड़ी सीधी-सादी, स्वाभाविक और सरल है और कहीं चमत्कारपूर्ण और आलंकारिक। इन दोनों विशेषताओं के कारण भी सूर का महत्व बहुत-कुछ बढ़ा ही है। उनके जो पद प्रसाद-गुण-पूर्ण हैं, वे हृदय के अकृत्रिम भावों और संगीत की मधुर लय से युक्त होने के कारण बड़े सुंदर हैं और जिन पदों में अलंकारों की साहित्यिक छटा मिलती है, वे एक ओर तो कवि के व्यापक ज्ञान और विस्तृत अध्ययन के परिचायक हैं और दूसरी ओर उनके काव्य-कौशल के। इन दोनों प्रकार के पदों में कवि की दृष्टि कथा अथवा घटना का वर्णन करने की ओर विशेष नहीं है ; इनकी ओर तो केवल उतना ही संकेत किया गया है, जितना अवतरण

समझने के लिए पर्याप्त हो। वस्तुतः सूर के पद भावपूर्ण हैं। जिस भाव का वर्णन उन्होंने किया है, उसकी ओर कभी तो वे पद की प्रथम पंक्ति में ही स्पष्ट संकेत कर देते हैं और कभी पद के अन्त में पद-सार रूप अन्तिम पंक्ति रखते हैं। भावों का क्रमिक विकास पूर्ण पद में रहता है। इस सम्बन्ध में कुछ आलोचकों का कहना है कि सूर की अन्तिम पंक्ति प्रायः वर्णन-शैली की दृष्टि से मूल भाव अथवा विषय से असंबद्ध है। सूर के कुछ पदों के लिए यह कथन सत्य हो सकता है, परंतु भक्त कवि के हृदय को समझकर अनेक पदों का रसास्वादन किया जाय, तो हम इसमें सूर-काव्य का दोष नहीं, चमत्कार ही पायेंगे। कम-से-कम इतना तो ध्यान ही रखना चाहिए कि केवल काव्य-शास्त्र-प्रेमियों के रंजन के लिए ही भक्त-कवि रचना नहीं करता। दूसरी बात यह है कि जिन विषयों में कवि की वृत्ति अत्यन्त लीन होती है, उनके सम्बन्ध में आंतरिक भावावेग की रोक रखने का प्रयत्न भी कोई सुकवि नहीं कर सकता; ब्रह्मानन्द में लीन कवि की दृष्टि इस ओर जाती ही नहीं।

रचना-शैली की दृष्टि से सूर की कविता महाकाव्य और रीति-काव्य की मध्यवर्तिनी कही जा सकती है। सूर के पदों में प्रबंध-काव्यों की तरह कथा का अंश भी है—यह दूसरी बात है कि सूरकाव्य में कथानक का उत्तरोत्तर विकास नहीं मिलता—और रीति-कालीन मुक्तक काव्य की तरह एक भावपूर्ण दृश्य लेकर चित्र रूप में भी पदों की रचना की गयी है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि एक-एक घटना का वर्णन कवि ने कई-कई पदों में किया है, जिसके परिणाम-स्वरूप पुनरुक्ति-सम्बन्धी दोष कवि के काव्य में आ गया है। यह कथन इस दृष्टि से तो ठीक है कि एक ही बात का वर्णन कवि ने कई-कई पदों में किया है; परन्तु जब सूरदास का

उद्देश्य ही मुक्तक काव्य की रचना करना है, तब हम उस बात को दोष-रूप में क्यों लें, जिसे कवि ने स्वयं ही अपनाया है।

दूसरी बात यह है कि पुनरुक्ति को भी तभी दोष कहना उचित है, जब किसी ग्रंथ के पठन-पाठन के समय उसकी रोचकता में बाधा आती हो; केवल एक ही कथा को अनेक पदों में संकेत-रूप में देखकर हम उसे पुनरुक्ति-दोष कहने को तैयार नहीं। क्या सत्य ही सूर-काव्य के विभिन्न पदों की रोचकता में कुछ कमी आती है? इस प्रश्न का उत्तर तो सहृदय काव्य-प्रेमी ही दे सकते हैं; अपनी अयथार्थ बात पर भी दृढ़ रहनेवाले काव्य के शुष्क आलोचक नहीं।

तीसरे, इस पुनरुक्ति का कारण अत्यंत मनोरम भावों को विशेष रुचिकर बनाने का ध्येय है। अपने दैनिक जीवन में भी साधारण खाद्य-पदार्थों को हम तरह-तरह से तैयार कराके स्वादिष्ट बनाने का प्रयत्न करते हैं। कवि ने यही कार्य अपनी रचना में किया है। एक ही विषय पर विभिन्न दृष्टिकोण से विचार करके जो विशदता और स्पष्टता लाने में कवि समर्थ हुआ है, वह अधिकांश कवियों के लिए ईर्ष्या की ही वस्तु रहेगी। हमें तो यह सूर-काव्य की विशेषता ही जान पड़ती है।

सूर ने कुछ कूट-पदों की रचना भी की है। इनके अर्थ लगाने का प्रयत्न बराबर होता आया है, फिर भी इनके अर्थ के संबंध में विद्वानों में मतभेद बना हुआ है। प्रश्न हो सकता है कि क्या सूर ने अपनी विद्वत्ता या पांडित्य दिखाने के लिए दृष्टकूट पदों की रचना की थी? हम समझते हैं कि सरलता-प्रिय सूरदास ने तत्कालीन शैली का अनुकरण करके ही इनकी रचना की होगी। तुलसीदास की दोहावली और सतसई में भी कुछ दोहे ऐसे मिलते हैं। इनकी रचना का कारण भी हम यही समझते हैं। शुद्ध काव्य की दृष्टि से ऐसे पदों अथवा छंदों की रचना प्रशंसनीय नहीं हो सकती।

गोपी-विरह

और

भँवर-गीत

सँदेसौ देवकी सौं कहियौ।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की मया करत ही रहियौ॥
उबटन तेल और तातौ जल देखत ही भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ-सोइ देती करम करम करि न्हाते॥
जदपि टेव जानति हौ उनकी तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रात उठत मेरे लाल लडैतेहिं माखन-रोटी भावै॥
अब यह सूर मोंहिं निसि-बासर बड़ो रहत जिय सोच।
मेरौ अलक लड़ैतौ मोहन ह्वैहैं करत सँकोच॥ १॥

मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कछु वैसेहिं धर्यो रहै।
को उठि प्रातकाल लै माखन को कर नेति गहै॥
सूनै भवन जसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
नित उठि घर घेरत हीं ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज मैं आनन्द हुतौ मुनि मनसाहू न गहै।
सूरदास-स्वामी बिन गोकुल कौड़ी हू न लहै॥ २॥

जद्यपि मन समुझावत लोग।
सूल होत नवनीत देखि कै मोहन के मुख जोग॥
प्रात समय उठि माखन-रोटी को बिन माँगे दैहै?
को मेरे बालक कुँवर कान्ह को छन-छन आगो लैहै?
कहियौ जाय पथिक घर आवैं राम स्याम दोउ भैया।
सूर वहाँ कत होत दुखारी जिनके मो सी मैया॥ ३॥

प्रीति करि दीन्हीं गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी॥
मुरली मधुर चोंप करि काँपो मोर चँद्र ठटवारी।
बंक विलोकनि लूक लागि बस सकीं न तनहिं सम्हारी॥

तलफत छाँड़ि चले मधुबन कौ फिरि कै लई न सार।
सूरदास वा कलप-तरोवर फेरि न बैठीं डार।। ४ ।।

कोउ ब्रज बाँचत नाहिंन पाती।
कत लिखि-लिखि पठवत नँदनंदन कठिन बिरह की काँती।।
नैन सजल कागद अति कोमल कर अँगुरी अति ताती।
परसैं जरैं बिलोकैं भींजै दुहूँ भाँति दुख छाती।।
को बाँचै ये अंक सूर सुनि कठिन मदन सर घाती।
सब सुख लै गए श्याम मनोहर हमकौं दुख दै थाती।। ५ ।।

सँदेसनि मधुबन कूप भरे।
जे कोइ पथिक गए हैं ह्याँ तै फिर नहिं अवन करे।।
कै वै श्याम सिखाय समोधे कै वै बीच मरे।
अपने नहिं पठवत नँदनंदन हमरेउ फेरि धरे।।
मसि खूँटी, कागर जल भीजै, सरदौ लागि जरे।
पाती लिखैं कहौ क्यों करि जो पलक कपाट अरे।। ६ ।।

मेरे मन इतनी सूल रही।
वै बतियाँ छतियाँ लिखि राखीं जे नँदलाल कही।।
एक दिवस मेरे गृह आये मैं रहि मथति दही।
देखि तिन्हें मैं मान कियौ सखि सौ हरि गुसा गही।।
सोचति अति पछितातति राधिका मुर्छित धरनि ढही।
सूरदास प्रभु के बिछुरे तैं बिथा न जाति सही।। ७ ।।

फूल बिनन नहिं जाउँ सखीरी! हरि बिन कैसे बीनौं फूल।
सुन री, सखी! मोहिं राम दोहाई फूल लगत तिरसूल।।
वे जौ देखियत राते-राते फूलन फूली डार।
हरि बिन फूल झार से लागत झरि-झरि परत अँगार।।
कैसे कै पनघट जाउँ सखी री! डोलौं सरिता-तीर।

भरि-भरि जमुना उमड़ि चली है इन नैनन के नीर ॥
इन नैनन के नीर सखी री ! सेज भई घरनाउँ ।
चाहति हौं याही पै चढ़ि कै स्याम-मिलन को जाउँ ॥
प्रान हमारे बिन हरि प्यारे रहे अधरन पर आय ।
सूरदास के प्रभु सौं सजनी कौन कहै समुझाय ॥ ८ ॥

किधौं घन गजरत नहिं उन देसनि ?
किधौं वहि इन्द्र हठिहि हरि वरज्यौ दादुर खाए सेषनि ॥
किधौं वहि देस बकन मग छाँड्यौ, धर बूड़ति न प्रवेसनि ।
किधौं वहि देस मोर,चातक, पिक, बधिकनि बघे विसेषनि ॥
किधौं वहि देस बाल नहिं झूलति गावति गीत सहेसनि ।
पथिक न चलत सूर के प्रभु पै जासौं कहौं सँदेसनि ॥ ९ ॥

हमारे माई मोरउ बैर परे ।
घन गरजैं बरजैं नहिं मानत त्यौं-त्यौं रटत खरे ॥
करि इक ठौर बीनि इनके पँख मोहन सीस धरे ।
याही तैं बिरहिन कौं मारत हरि हौं ढीठ करे ॥
को जानै काहे तैं सजनी हमसौं रहत अरे ।
सूरदास परदेश बसे हरि ये ब्रज तैं न टरे ॥ १० ॥

जौ पै कोउ मधुबन लै जाय ।
पतिया लिखी स्यामसुन्दर को, कर-कंकन देउँ ताय ॥
अब वह प्रीति कहाँ गई माधव ! मिलते वेनु बजाय ॥
नयन-नीर सारँग-रिपु भींजै दुख सौं रैनि बिहाय ॥
सून भवन मोहिं खरौ डरावै यह रितु मन न सुहाय ।
सूरदास यह समौ गए तैं पुनि कह लैहैं आय ॥ ११ ॥

आजु घनस्याम की अनुहारि ।
उनै आए साँवरे सखिरी ! लेहि रूप निहारि ॥

इन्द्रधनुष मनौ पीत बसन छवि, दामिनि दसन विचारि ॥
जनु बगपाँति माल मोतिन की, चितवत चित्त लेत हैं हारि ॥
गरजत गगन गिरा गोविंद की सुनत नयन भरे बारि ।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के बिकल भईं ब्रजनारि ॥ १२ ॥

सखी इन नैननि तैं घन हारे ।
बिनु ही रितु बरसत निसि-बासर सदा सजल दोउ तारे ॥
ऊरध स्वाँस समीर तेज अति सुख अनेक द्रुम डारे ।
बदन सदन मैं बसे बचन खग रितु पावस के मारे ॥
ढरि-ढरि बूँद परत कंचुकि पर मिलि अंजन सौं कारे ।
मानहुँ सिव की परन-कुटी बिच धारा स्याम निनारे ॥
सुमिरि-सुमिरि गरजत अरु छाँड़त अस्रु सलिल बहु धारे ।
बूड़त ब्रजहिं सूर को राखै बिनु गिरिवर-धर प्यारे ॥ १३ ॥

यहि डर बहुरि न गोकुल आए ।
सुन री सखी ! हमारी करनी समुझि मधुपुरी छाए ॥
अधरातिक तैं उठि बालक सब मोहिं जगैहैं आय ।
बिनु पदत्रान बहुरि पठवैंगी बनहिं चरावन गाय ॥
सूनौ भवन आनि रोकैंगी चोरत दधि नवनीत ।
पकरि जसोदा पै लै जैहैं नाचति गावति गीत ॥
ग्वालिनि मोहिं बहुरि बाँधैंगी केते बचन लगाय ।
एते दुःखन सुमिरि सूर मन बहुरि सहै को जाय ॥ १४ ॥

बिछुरे श्री ब्रजराज आज इनि नैननि की परतीति गई ।
उड़ि न मिले हरि संग बिहंगम ह्वै न गए घनस्याम मई ॥
यातैं क्रूर कुटिल सित मेचक बृथा मीन छबि छीनि लई ।
रूप-रसिक लालची कहावत सो करनी कछु तौ न भई ॥

अब काहैं सोचत जल मोचत समय गए नित सूल नई।
सूरदास याही तैं जड़ भए जब पलकनि हठि दगा दई॥ १५॥

बारक जाइयौ मिलि माधौ।
को जानै कब छूटि जाइगौ स्वाँस रहे जिय साधौ॥
पहुनेहु नंद बबा के आवहु देखि लेहुँ पल आधौ।
मिलि ही मैं विपरीत करी विधि, होत दरस कौ बाधौ॥
सो सुख सिव सनकादि न पावत, जो सुख गोपिन लाधौ।
सूरदास राधा बिलपति है, हरि कौ रूप अगाधौ॥ १६॥

निसि दिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहति पावस रितु हम पैं जब तैं स्याम सिधारे॥
दृग अंजन लागत नहिं कबहूँ, उर-कपोल भए कारे।
कंचुकि नहिं सूखत सुनु सजनी! उर-बिच बहत पनारे॥
सूरदास प्रभु अंबु बढ़्यौ है, गोकुल लेहु उबारे।
कहँ लौं कहौं स्यामघन सुंदर बिकल होत अति भारे॥ १७॥

नैन बिरह की बेलि बई।
सींचत नैन-नीर के सजनी, मूल पताल गई॥
बिकसत लता सुभाय आपने छाया सघन भई।
अब कैसे निरवारौं सजनी सब तन पसरि छई॥
को जानै काहू के जिय की छिन छिन होत नई।
सूरदास स्वामी के बिछुरे लागी प्रेम झई॥ १८॥

ब्रज बसि काके बोल सहौं।
इन लोभी नैननि के कारन परबस भई जु रहौं॥
बिसरि लाज गई, सुधि नहिं तन की, अबधौं कहा कहौं।
मेरे जिय मैं ऐसी आवत, जमुना जाइ बहौं॥

इक बन ढूँढ़ि सकल बन ढूँढ़्यौ कतहुँ न स्याम लहौं।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस कौं यह दुख अधिक सहौं ।। १६ ।।

अति रस लंपट मेरे नैन ।
तृप्ति न मानत पियत कमल-मुख,सुन्दरता-मधु-ऐन ।।
दिन अरु रैनि दृष्टि-रसना-रस निमिख न मानत चैन ।
सोभा-सिंधु समाइ कहाँ लौं हृदय-साँकरे-ऐन ।।
अब वह बिरह-अजीरन ह्वै कै बमि लाग्यौ दुख दैन ।
सूर बैद ब्रजनाथ मधुपुरी काहि पठाऊँ लैन ।। २० ।।

बहुर्‌यौ भूलि न आँखि लगी ।
सुपनेहूँ के सुख न सकी सहि, नींद जगाइ भगी ।।
बहुत प्रकार निमेष लगाए छूटि नहीं सठगी ।
जनु हीरा हरि लियो हाथ तैं ढोल बजाइ ठगी ।।
कर मीड़ति, पछिताति, बिचारति इहि बिधि निसा जगी ।
वह मूरति, वह सुख दिखरावै सोई सूर सगी ।। २१ ।।

हमको सुपनेहूँ में सोच ।
जा दिन तैं बिछुरे नँदनंदन यह ता दिन तैं पोच ।।
मनु गोपाल आए मेरें गृह हँस करि भुजा गही ।
कहा करौं बैरिनि भई निद्रा निमिष न और रही ।।
ज्यौं चकई प्रतिबिंब देखि कै आनंदै प्रिय जानि ।
सूर पवन मिस निठुर बिधाता चपल कियो जल आनि ।। २२ ।।

बिन माधौ राधा तन सजनी सब बिपरीत भई ।
गई छपाइ छपाकर की छबि रही कलंकमई ।।
लोचनहूँ तैं सरद सार-सी सुछबि निचोर लई ।
आँच लगैं च्यौनो सोनो ज्यौं त्यौं तनु धातु हई ।।

कदलीदल-सी पीठि मनोहर सो जनु उलटि गई ।
संपति सब हरि हरी सूर प्रभु बिपदा दई-दई ॥ २३ ॥

ब्रज तैं द्वै रितु पै न गईं ।
पावस अरु ग्रीषम प्रचंड सखि ! हरि बिनु अधिक भईं ॥
ऊरध स्वाँस समीर, नयनघन, सब जल जोग जुरे ।
बरसि जो प्रगट किए दुख दादुर हुते जे दूरि दुरे ॥
विषम वियोग दुसह दिनकर सम दिन प्रति उदय करे ।
हरि-बिधु बिमुख भए कहि सूरज को तन ताप हरे ॥ २४ ॥

नँदनंदन के बिछुरैं अँखियाँ उपमा जोग नहीं ।
कंज खंज मृग मीन न होहीं कविजन बृथा कहीं ॥
कंज होहिं तौ मिलैं पलकदल जामिनि होति जहीं ।
खंजनहूँ उड़ि जात छिनक मैं प्रीतम जित तितहीं ॥
मृग होतीं रहतीं निसि-बासर चंद बदन ढिगहीं ।
रूप-सरोवर के बिछुरैं कहुँ जीवत मीन नहीं ॥
ये झरना लौं झरतिं रैन-दिन उपमा सकल बहीं ।
सूर स्याम प्रभु सौं मिलिबे कौं अब घट साँस रहीं ॥ २५ ॥

नाथ अनाथनि की सुधि लीजै ।
गोपी, गाय, ग्वाल, गोसुत सब दीन मलीन दिनहि दिन छीजै ॥
नैननि जल-धारा बाढ़ी अति बूड़त ब्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी बिनती सुनहु हमारी बारक हूँ पतियाँ लिखि दीजै ॥
चरन-कमल-दरसन नव-नौका करुनासिंधु जगत जस लीजै ।
सूरदास प्रभु आस मिलन की एक बार आवन ब्रज कीजै ॥२६॥

मधुबन तुम कत रहत हरे ।
बिरह-बियोग श्यामसुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ॥

मोहन बेनु बजावत द्रुम-तर साखा टेकि खरे।
मोहे थावर अरु जड़ जंगम, मुनि गन ध्यान टरे॥
वह चितवति तू मन न धरत है फिरि फिरि पुहुप धरे।
सूरदास प्रभु बिरह-दवानल नख-सिख लौं पसरे॥ २७॥

अँखियाँ करति हैं अति आरि।
सुन्दर स्याम पाहुने के मिस मिलन जाहु दिन चारि॥
बाहँ थकी बायसहिं उड़ावत कब देखौं उनहार।
राधा स्याम स्याम करि टेरति कालिंदी कें करार॥
कमल-बदन ऊपर दुइ खंजन मानौ बूड़त बारि।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सकैं न पंख पसारि॥ २८॥

प्रीति करि काहूँ सुख न लह्यौ।
प्रीति पतंग करी दीपक सौं, आपै देह दह्यौ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सौं, संपुट माँझ गह्यौ।
सारँग प्रीति करी जो नाद सौं, सनमुख बान सह्यौ॥
हम जौ प्रीति करी माधौ सौं, चलत न कछू कह्यौ॥
सूरदास प्रभु बिनु दुख पावति, नैननि नीर बह्यौ॥ २९॥

प्रीति तौ मरिबौहू न बिचारै।
प्रीति पतंग ज्योति-पावक ज्यौं जरत न आपु सँभारै॥
प्रीति नाद सारँग मन मोह्यौ प्रगट पारधी मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन तें, गिरत न आपु सँभारै॥
सावन मास पपीहा बोलत पिय पिय करि जु पुकारै।
सूरदास-प्रभु दरसन कारन ऐसी भाँति बिचारै॥ ३०॥

प्रिय बिनु नागिनि कारी राति।
कबहुँक जामिनि उवति जुन्हैया, डसि उल्टी ह्वै जाति॥

जंत्र न फुरत मंत्र नहिं लागत, आयु सिरानी जाति।
सूर, स्याम बिनु बिकल बिरहिनी, मुरि मुरि लहरैं खाति।। ३१ ।।

देखियत चहुँ दिसि तैं घन घोरे।
मानौ मत्त मदन के हथियनि बल करि बंधन तोरे।।
स्याम सुभग-तनु चुअत गंडमद बरषत थोरे थोरे।
रुकत न पवन महावतहू तैं, मुरत न अंकुस मोरे।।
बिनु बेला जल निकसि नयन तैं कुच कंचुकि बँध बोरे।
मनौ निकसि बगपाँति दाँत उर अवधि सरोवर फोरे।।
तब तिहिं समय आनि ऐरापति ब्रजपति सौं कर जोरे।।
अब सुनि सूर स्याम-केहरि बिनु गरत गात जैसे ओरे।। ३२ ।।

सिखिनि सिखर चढ़ि टेरि सुनायौ।
बिरहिन सावधान ह्वै रहियौ सजि पावस दल आयौ।।
नव बादर बानैत पवन ताजी चढ़ चुटकि दिखायो।
चमकत बीजु सेल कर मंडित, गरज निसान बजायौ।।
बक चातक अरु मोर चकोरनि सब मिलि मारू गायौ।
मदन सुभट कर बान पंच लै ब्रजतन सन्मुख धायौ।।
जानि बिदेस नंदनंदन कौं अबलनि त्रास दिखायौ।
सूर स्याम पहिलैं गुन सुमिरत प्रान जात बिरमायौ।। ३३ ।।

बहुत दिन जीवौ पपीहा प्यारौ।
बासर रैनि नावँ लै बोलत भयौ बिरह जुर कारौ।।
आपु दुखित पर दुखित जानि जिय चातक नाम तिहारौ।
देखौं सकल बिचारि सखी! जिय बिछुरन कौ दुख न्यारौ।।
जाहि लगै सोई पै जानै प्रेम बान अनियारौ।
सूरदास प्रभु स्वाति बूँद लगि तज्यौ सिंधु करि खारौ।। ३४ ।।

अब इहिं तनहिं राखि का कीजै।
सुनु री सखी स्यामसुंदर बिनु बाँटि बिसम विष पीजै।।
कै गिरिए गिरि चढ़ि कै सजनी, सीस संकरहिं दीजै।
कै दहिए दारुन दावानल, जाइ जमुन धँस लीजै।।
दुसह बियोग-बिरह माधव कै कौन दिनहिं दिन छीजै।
सूर स्याम-प्रीतम बिनु राधे सोचि मनहिं मन खीजै।। ३५ ।।

पथिक संदेसौ कहियौ जाय।
आवैंगे हम दोनों भैया, मैया जनि अकुलाय।।
याकौ बिलगु बहुत हम मान्यौ जो कहि पठयो धाय।
कहलौं कीर्ति मानिए तुम्हरी बड़ो कियौ पय प्याय।।
कहियौ जाय नंद बाबा सौं, अरु गहि पकरौ पाय।
दोऊ दुखी होन नहिं पावहिं धूमरि धौरी गाय।।
जद्यपि मथुरा बिभव बहुत है तुम बिनु कछु न सुहाय।
सूरदास ब्रजबासी लोगनि भेंटत हृदय जुड़ाय।। ३६ ।।

नीकैं रहियौ जसुमति मैया।
आवहिंगे दिन चारि-पाँच मैं हम हलधर दोउ भैया।।
जा दिन तैं हम तुमतैं बिछुरे कोउ न कह्यौ कन्हैया।
कबहूँ प्रात न कियौ कलेवा साँझ न पीनी धैया।।
बंसी, बेंत, विषान देखियौ द्वार अबेर सबेरौ।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरौ।।
कहियौ जाइ नंदबाबा सौं बहुत निठुर मन कीन्हौं।
सूरदास पहुँचाइ मधुपुरी बहुरि न सोधो लीन्हौं।। ३७ ।।

हरि गोकुल की प्रीति चलाई।
सुनहु उपँगसुत मोहिं न बिसरत ब्रजबासी सुखदाई।।
यह चित होत जाउँ मैं अबहीं, यहाँ नहीं मन लागत।

गोप सुग्वाल गाय बन चारत अति दुख पायो त्यागत ॥
कहँ माखन चोरी ? कह जसुमति 'पूत जेंव' करि प्रेम।
सूर स्याम के बचन सहित सुन व्यापत आपन नेम ॥ ३८ ॥

पहिले करि परनाम नंद सों समाचार सब दीजौ।
और वहाँ वृषभानु गोप सौं जाय सकल सुधि लीजौ ॥
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरेहुतो भेंटियौ।
सुख-संदेस सुनाय हमारो गोपिन को दुख मेटियौ ॥
मंत्री इक बन बसत हमारो ताहि मिलै सचु पाइयौ।
सावधान ह्वै मेरेहूतो ताही माथ नवाइयौ ॥
सुंदर परम किसोर बयक्रम चंचल नयन बिसाल।
कर मुरली सिर मोरपंख पीतांबर उर बनमाल ॥
जनि डरियौ तुम सघन बनन मैं ब्रजदेवी रखवार।
वृंदाबन सो बसत निरंतर कबहुँ न होत नियार ॥
ऊधव प्रति सब कही स्याम जू अपने मन की प्रीति।
सूरदास किरपा करि पठए यहै सकल ब्रज रीति ॥ ३९ ॥

कहियौ नंद कठोर भए।
हम दोउ बीरैं डारि पर-घरै मानौ थाती सौंपि गए ॥
तनक तनक तैं पालि बड़े किए बहुतै सुख दिखराए।
गोचारन को चलत हमारे पाछे कोसक धाए ॥
ये बसुदेव देवकी हम सौं कहत आपने जाए।
बहुरि बिधाता जसुमतिजू के हमहिं न गोद खिलाए ॥
कौन काज यह राज, नगर को सब सुख सौं सुख पाए।
सूरदास ब्रज समाधान कर आजु कालिह हम आए ॥ ४० ॥

सखा ! सुनौ मेरी इक बात।
वह लता गन संग गोपिन सुधि करत पछितात ॥

कहाँ वह वृषभानुतनया परम सुन्दर गात।
सुरति आए रासरस की अधिक जिय अकुलात॥
सदा हित यह रहत नाहीं सकल मिथ्या जात।
सूर प्रभु यह सुनौ मोसौं एक ही सौं नात॥ ४१॥

जदुपति लख्यौ तेहि मुसकात।
कहत हम्ह मन रही जोई सोइ भई यह बात॥
बचन परगट करन लागे प्रेम-कथा चलाय।
सुनहु ऊधव मोहिं ब्रज की सुधि नहीं बिसराय॥
रैनि सोवत, चलत, जागत लगत नहिं मन आन।
नंद जसुमति नारि नर ब्रज जहाँ मेरो प्रान॥
कहत हरि, सुनि उपँगसुत! यह कहत हौं रस रीति।
सूर चित तैं टरति नाहीं राधिका की प्रीति॥ ४२॥

ऊधव! यह मन निस्चय जानौ।
मन क्रम बच मैं तुम्हैं पठावत ब्रज को तुरत पलानौ॥
पूरन ब्रह्म, सकल अबिनासी ताके तुम हौ ज्ञाता।
रेख, न रूप, जाति, कुल नाहीं, जाके नहिं पितु माता॥
यह मत दै गोपिन कहँ आवहु बिरह-नदी में भासति।
सूर तुरत यह जाय कहौ तुम ब्रह्म बिना नहिं आसति॥ ४३॥

ऊधव बेगि ही ब्रज जाहु।
सुरति सँदेस सुनाय मेटौ बल्लभिन को दाहु॥
काम-पावक तूल मय तन बिरह-स्वाँस समीर।
भसम नाहिंन होन पावत लोचनन के नीर॥
अजौं लौं यहि भाँति ह्वैहै कछुक सजग सरीर।
इते पर बिनु समाधाने क्यों धरैं तिय धीर॥

कहौं कहा बनाय तुम सौं सखा साधु प्रवीन।
सूर सुमति बिचारिए क्यों जिएँ जल बिनु मीन॥ ४४॥

ऊधव मन अभिलाष बढ़ायौ।
जदुपति जोग जानि जिय साँचो नयन अकास चढ़ायौ।
नारिन पै मोको पठवत हौ कहत सिखावन जोग।
मनहीं मन अब करत प्रसंसा है मिथ्या सुख-भोग॥
आयसु मानि लियौ सिर ऊपर, प्रभु-आज्ञा परमान।
सूरदास प्रभु पठवत गोकुल मैं क्यों कहौं कि आन॥ ४५॥

कोऊ आवत है तन स्याम।
वैसेइ पट, वैसिय रथ-बैठनि, वैसिय है उर दाम॥
जैसी हुतिं उठि तैसिय दौरीं छाँड़ि सकल गृह-काम।
रोम पुलक, गदगद भइ तिहि छन सोचि अंग अभिराम॥
इतनी कहत आय गए ऊधो रहीं ठगी तिहि ठाम।
सूरदास प्रभु ह्याँ क्यों आवैं, बँधे कुब्जा-रस स्याम॥ ४६॥

हैं कोइ वैसीइ अनुहारि।
मधुवन तैं इत आवत सखिरी ! चितौ तु नयन निहारि॥
माथे मुकुट, मनोहर कुंडल, पीत बसन रुचिकारि।
रथ पर बैठि कहत सारथि सों ब्रज तन बाँह पसारि॥
जानति नाहिं न पहचानति हौं मनु बीते जुग चारि।
सूरदास स्वामी के बिछुरे जैसे मीन बिनु बारि॥ ४७॥

कबहूँ सुधि करत गोपाल हमारी।
पूछत नंद पिता ऊधौ सौं अरु जसुमति महतारी॥
कबहुँ तौ चूक परी अनजानत, कह अब के पछताने।
बासुदेव घर-भीतर आए हम अहीर नहिं जाने॥

पहिले गरग कह्यो हो हम सौं या देखे जनि भूलै।
सूरदास स्वामी के बिछुरे रात-दिवस उर सूलै ॥ ४८ ॥

देखौ नंद द्वार रथ ठाढ़ो।
बहुरि सखी सुफलकसुत आयो पर्यो संदेह उर गाढ़ो ॥
प्रान हमारे तबहिं गयौ लै अब केहि कारन आयो।
जानति हौं अनुमान सखी री कृपा करन उठि धायो ॥
इतने अंतर आय उपँगसुत तेहि छन दरसन दीन्हों।
तब पहिचानि सखा हरि जू को परम सुचित मन कीन्हों ॥
तब परनाम कियो अति रुचि सों और सबहिं कर जोरे।
सुनियत रहे तैसेई देखे परम चतुर मति-भोरे ॥
तुम्हरो दरसन पाय आपनो जन्म सफल करि जान्यो।
सूर ऊधो सौं मिलत भयो सुख ज्यों झख पायो पान्यो ॥ ४९ ॥

कहौ कहाँ तैं आए हौ।
जानति हौं अनुमान मनौं तुम यादवनाथ पठाए हौ ॥
वैसोइ बरन, बसन पुनि वैसेइ, तन भूषन सजि ल्याए हौ।
सरबसु लै तब संग सिधारे अब कापर बहिराए हौ ॥
सुनहु, मधुप! एकै मन सबको सो तो वहाँ लै छाए हौ।
मधुबन की मानिनी मनोहर तहँहिं जाहु जहँ भाए हौ ॥
अब यह कौन सयानप ब्रज पर का कारन उठि धाए हौ।
सूर जहाँ लौं स्याम-गात हैं जानि भले करि पाए हौ ॥ ५० ॥

निरखत अंक स्याम सुंदर के बार-बार लावति छाती।
लोचन-जल कागद-मसि मिलि कै ह्वै गई स्याम स्याम की पाती ॥
गोकुल बसत संग गिरिधर के कबहुँ बयारि लगी नहिं ताती।
तबकी कथा कहा कहौं ऊधो जब हम बेनुनाद सुनि जाती ॥

हरि के लाड़ गनति नहिं काहू निसि दिन सुदिन रासरस माती।
प्राननाथ तुम कबधौं मिलौगे सूरदास प्रभु बालसँघाती ॥५१॥

ऊधो ! हम आजु भईं बड़भागी।
जैसे सुमन-गंध लै आवतु पवन मधुप अनुरागी ॥
अति आनंद बढ़्यो अँग-अँग में परै न यह सुख त्यागी।
बिसरे सब दुख देखत तुमको स्याम सुंदर हम लागी ॥
ज्यों दर्पन-मधि दृग निरखत जहँ हाथ तहाँ नहिं जाई।
त्योंही सूर हम मिलीं साँवरे बिरह-बिथा बिसराई ॥ ५२ ॥

सुनु गोपी हरि को संदेस।
करि समाधि अंतर-गति चितवौ प्रभु को यह उपदेस ॥
वै अबिगत, अबिनासी, पूरन, घट-घट रहे समाय।
तिहि निस्चय कै ध्यावहु ऐसे सुचित कमल मन लाय ॥
यह उपाय करि बिरह तजौगी मिलै ब्रह्म तब आय।
तत्व ज्ञान बिनु मुक्ति न होई, निगम सुनावत गाय ॥
सुनत सँदेस दुसह माधव के गोपी जन बिलखानी।
सूर बिरह की कौन चलावै नयन ढरत अति पानी ॥ ५३ ॥

ए अलि ! कहा जोग में नीकौ ?
तजि रस रीति नंदनंदन की सिखवत निर्गुन फीकौ ॥
देखत सुनत नाहिं कछु स्रवननि, ज्योति ज्योति करि ध्यावत।
सुंदर स्याम दयालु कृपानिधि कैसे हौ बिसरावत ॥
सुनि रसाल मुरली-सुर की धुनि सोइ कौतुक रस भूलैं।
अपनी भुजा ग्रीव पर मैलैं गोपिन के सुख फूलैं ॥
लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि-मिलि कै घर बन खेली।
अब तुम सूर खवावन आए जोग जहर की बेली ॥ ५४ ॥

हम तो नंद घोष की बासी।
नाम गोपाल, जाति कुल गोपहिं, गोप गोपाल-उपासी ॥
गिरिवरधारी, गोधनचारी, वृंदावन - अभिलाषी।
राजा नंद, जसोदा रानी, जलधि नदी जमुना-सी ॥
प्रान हमारे परम मनोहर कमल नैन सुखरासी।
सूरदास प्रभु कहौं कहाँ लौं अष्ट महासिधि दासी ॥ ५५ ॥

हमसौं कहत कौन-सी बातैं।
सुनि ऊधौ हम समुझत नाहीं फिरि पूँछति हैं तातैं ॥
को नृप भयौ कंस किन मार्यौ को बसुदेव सुत आहि।
यहाँ हमारे परम मनोहर जीजतु हैं मुख चाहि ॥
दिन प्रति जात सहज गोचारन गोप सखा लै संग।
बासरगत रजनीमुख आवत करत नयन गति पंग ॥
को व्यापक पूरन अबिनासी, को बिधि बेद अपार।
सूर बृथा बकवाद करत हौ, या ब्रज नंदकुमार ॥ ५६ ॥

आयो घोस बड़ो ब्योपारी।
लादि खेप गुन ज्ञान जोग की ब्रज मैं आय उतारी ॥
फाटक दैकर हाटक माँगत भोरै निपट सुधारी।
धुर ही तैं खोटो खायो है लए फिरत सिर भारी ॥
इनके कहे कौन डहकावै, ऐसी कौन अजानी।
अपनो दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप कौ पानी ॥
उधो जाहु सबार यहाँ तैं बेगि गहरु जनि लावौ।
मुँहमाँग्यो पैहौ सूरज प्रभु साहुहि आनि दिखावौ ॥ ५७ ॥

जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
यह ब्यौपार तिहारो ऊधौ ऐसौं ही फिरि जैहै ॥
जापै लै आए हौ मधुकर ताकैं उर न समैहै ।

दाख डारि कै कटुक निबौरी को अपनैं मुख खैहै ॥
मूरी के पातनि के क्वैना को मुक्ताहल दैहै ।
गुन करि मोहे सूर साँवरे को निरगुन निरबैहै ॥ ५८ ॥

नैना नाहिं नैं ये रहत ।
जदपि मधुप तुम नंदनँदन कौं निपटहिं निकट कहत ॥
हृदय माँझ जो हरिहिं बतावत सीखौ नाहिं गहत ।
परी जो प्रकृति प्रगट दरसन की देखोइ रूप चहत ॥
यह निरगुन उपदेस तिहारौ स्रवनहुँ नाहिं सहत ।
सूरदास-प्रभु बिनु अवलोकें सुख कोऊ न लहत ॥ ५९ ॥

हम तौ दुहूँ भाँति फल पायौ ।
जो ब्रजनाथ मिलैं तौ नीकौ, नातरु जग जस गायौ ॥
कहँ वै गोकुल की गोपी सब बरनहीन लघु जातीं ।
कहँ वै कमला के स्वामी सँग मिलि बैठीं इक पाँतीं ॥
निगमध्यान मुनि ग्यान अगोचर, ते भए घोष निवासी ।
ता ऊपर अब साँच कहौ धौं मुक्ति कौन की दासी ॥
जोग कथा, पालागौं ऊधौ, ना कहु बारंबार ।
सूर स्याम तजि और भजै जौ ताकी जननी छार ॥ ६० ॥

पूरनता इन नयनन पूरी ।
तुम जो कहत स्रवननि सुनि समुझत, ये याही दुख मरति बिसूरी ॥
हरि अंतर्जामी सब जानत बुद्धि बिचारत बचन समूरी ।
वै रस, रूप, रतन सागर निधि क्यों मनि पाय खवावत धूरी ॥
रहु रे कुटिल चपल मधु लंपट, कितव संदेस कहत कटु कूरी ।
कँह मुनिध्यान कहाँ ब्रजजुवती ! कैसे जात कुलिस करि चूरी ॥
देखु प्रगट सरिता, सागर, सर सीतल सुभग स्वाद रुचि रूरी ।
सूर स्वातिजल बसै जिय चातक और सबै चित लागत भूरी ॥६१॥

हम तैं हरि कबहूँ न उदास।
राति खवाय पिवाय अधररस सो क्यौं बिसरत ब्रज कौ बास॥
तुम सौं प्रेमकथा को कहिबो मनहुँ काटिबौ घास।
बहिरौ तान-स्वाद कह जानै, गूँगौ बात-मिठास॥
सुनु री सखी! बहुरि फिरि ऐंहैं वै सुख विविध बिलास।
सूरदास ऊधौ अब हमको भयौ तेरहौं मास॥६२॥

स्याम मुख देखे ही परतीति।
जौ तुम कोटि जतन करि सिखवत जोग ध्यान की रीति॥
नाहिंन कछू सयान ग्यान मैं यह हम कैसे मानैं।
कहौ कहा कहिए या नभ कौं कैसे उर मैं आनैं॥
यह मन एक, एक वह मूरति भृंग कीट सम मानैं।
सूर सपथ दै बूझत ऊधौ यह ब्रज लोग सयानैं॥६३॥

लरिकाई को प्रेम कहौ सखि, कैसे करिकै छूटत।
कहा कहौं ब्रजनाथ-चरित अब अंतर गति यौं लूटत॥
चंचल चाल मनोहर चितवनि, वह मुसुकानि मंद धुनि गावत।
नटवर भेस नंदनंदन कौ वह बिनोद गृह बन तैं आवत॥
चरन-कमल की सपथ करति हौं यह सँदेस मोहि बिष-सम लागत।
सूरदास मोहिं निमिष न बिसरत मोहन मूरति सोवत जागत॥६४॥

अटपटि बात तिहारी ऊधौ सुनै सो ऐसी को है।
हम अहीरि अबला सठ मधुकर! तिन्हैं जोग कैसे सोहै॥
बूचिहिं खुभी, आँधरिहिं काजर, नकटी पहिरै बेसरि।
मुँडली पाटी पारन चाहै, कोढ़ी अंगहि केसरि॥
बहिरी सौं पति मता करै सो उतर कौन पै पावै।
ऐसो न्याव है ताको ऊधौ जो हमैं जोग सिखावै॥

जो तुम हमको लाए कृपा करि सिर चढ़ाय हम लीन्हें।
सूरदास नरियर जो विप्र को करहिं बंदना कीन्हें॥ ६५॥

बिलग जनि मानहु, ऊधौ प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि जे आवहिं ते कारे।
तुम कारे, सुफलकसुत कारे, कारे मधुप भँवारे।
तिनके संग अधिक छबि उपजत कमलनैन मनिआरे॥
मानहु नील माट तैं काढ़े लै जमुना ज्यों पखारे।
ता गुन स्याम भई कालिंदी सूर स्याम-गुन-न्यारे॥ ६६॥

अपने स्वारथ के सब कोऊ।
चुप करि रहौ मधुप रसलंपट तुम देखे अरु ओऊ॥
औरो कछू सँदेस कह्यो है कहि निवरौ किन सोऊ।
लीन्हें फिरत जोग युवतिनि कौं बड़े सयाने दोऊ॥
तौ कत रास रच्यौ बृन्दावन जो पै ज्ञान हुतोऊ।
अब हमरे जिय बैठो यह पद 'होनी होउ सो होऊ'॥
छुटि गयौ मान परेखो रे अलि! हृदय हुतौ वह जोऊ।
सूरदास प्रभु गोकुल नायक चित चिंता अब खोऊ॥ ६७॥

अखियाँ हरि दरसन की भूखी।
कैसे रहैं रूप रस राँची ए बतियाँ सुनि रूखी॥
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं झूखी।
अब इन जोग सँदेसनि ऊधौ अति अकुलानी दूखी॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी।
सूर जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी॥ ६८॥

कहा लै कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध स्रुति बचन अगोचर मनसा तहाँ न जाई॥
रूप न रेख बरन बपु जाकै संग न सखा सहाई।

ता निरगुन सौं प्रीति निरंतर क्यों निबहै री माई ॥
जल बिनु तरंग चित्र बिनु भीतिहिं बिनु चित ही चतुराई ।
अब ब्रज में यह नई रीति कछु ऊधौ आनि चलाई ॥
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति रोम-रोम अरुझाई ।
श्याम सुभग तन सुन्दर लोचन निरखि सूर बलि जाई ॥ ६९ ॥

हम को हरि की कथा सुनाव ।
अपनी ग्यान-कथा हो, ऊधौ ! मथुरा ही लै गाव ॥
नागरि नारि भले बूझैंगी अपने बचन सुभाव ।
पालागौं इन बातनि, रे अलि ! उनहीं जाय रिझाव ॥
सुनि प्रियसखा स्यामसुन्दर के जो पै जिय सतिभाव ।
हरि-मुख अति आरत इन नयननि बारक बहुरि दिखाव ॥
जो कोउ कोटि जतन करै मधुकर, बिरहिनि और सुहाव ।
सूरदास मीन को जल बिनु नाहिं न और उपाव ॥ ७० ॥

हमारे हरि हारिल की लकरी ।
मन बच क्रम नँदनंदन सौं उर यह दृढ़ करि पकरी ॥
जागत, सोवत, सपने सौंतुख, कान्ह-कान्ह जकरी ।
सुनतहि जोग लगत ऐसौ अलि ज्यों करुई ककरी ॥
सोई ब्याधि हमें लै आए देखी सुनी न करी ।
यह तौ सूर तिन्हें लै दीजै जिनके मन चकरी ॥ ७१ ॥

ऊधौ इन नयनन नेम लियो ।
नँदनंदन सौं पतिव्रत बाँध्यो दरसत नाहिं बियो ॥
इन्द्र चकोर, मेघ प्रति चातक, जैसे धरन दियो ।
तैसे ये लोचन गोपालै इकटक प्रेम पियो ॥
ग्यान-कुसुम लै आए ऊधौ ! चपल न उचित कियो ।
हरि मुख कमल अमियरस सूरज चाहत वहै लियो ॥ ७२ ॥

रहु रे मधुकर ! मधु मतवारे।
कहा करौं निरगुन लै कै हौं जीवहु कान्ह हमारे॥
लोटत नीच पराग पंक मैं, पचत न आपु सम्हारे।
बारंबार सरक मदिरा कौ अपरस कहा उघारे॥
तुम जानत हमहूँ वैसी हैं जैसे कुसुम तिहारे।
घरी पहर सब कौं बिलमावत जेते आवत कारे॥
सुन्दर स्याम-कमल-दल-लोचन जसुमति नंदढुलारे।
सूर स्याम कौं सरबस अरप्यौ, का पै लेहि उधारे॥ ७३ ॥

काहे कौ रोकत मारग सूधौ।
सुनहु मधुप निरगुन-कंटक तैं राजपंथ क्यौं रूँधौ॥
कै तुम सिखै पठाए कुब्जा कै कही स्यामघन जू धौं।
वेद पुरान सुमृति सब ढूँढ़ौं जुवतिन जोग कहूँधौं॥
ताकौ कहा परेखो कीजै जानत छाँछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ॥ ७४ ॥

निरगुन कौन देस कौ बासी।
मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी।
कैसो बरन, भेष है कैसौ, केहि रस मैं अभिलाषी॥
पावैगौ पुनि कियो आपनौ, जो रे कहैगो गाँसी।
सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगौ सौ, सूर सबै मति नासी॥ ७५ ॥

मन मैं रह्यो नाहिंन ठौर।
नंदनंदन अछत कैसें आनिए उर और॥
चलत, चितवत, दिवस, जागत, सुपन सोवत राति।
हृदय तैं वह स्याम मूरति छिन न इत उत जाति॥
कहत कथा अनेक ऊधौ लोक लाभ दिखाइ।

कह करौं मन प्रेम पूरन घट न सिंधु समाइ ॥
स्याम गात सरोज आनन ललित गति मृदु हास ।
सूर इनके दरस कारन मरत लोचन प्यास ॥ ७६ ॥

ऐसेई जन दूत कहावत ।
मोको एक अचंभो आवत, या मैं ये कह पावत ॥
बचन कठोर कहत, कहि दाहत, अपनी महत गँवावत ।
ऐसी परकृति परति छाँह की, जुवतिन ग्यान बुझावत ॥
आपुन निलज रहत नखसिख लौं, एते पर पुनि गावत ।
सूर करत परसंसा अपनी, हारेहु जीति कहावत ॥ ७७ ॥

नैननि नंदनंदन ध्यान ।
तहाँ यह उपदेस दीजै जहाँ निरगुन ग्यान ॥
पानि-पल्लव-रेख गुनि-गुनि अवधि बिबिध बिधान ।
इते पर इन कटुक बचननि क्यों रहत तन प्रान ॥
चंद्र कोटि प्रकास मुख अवतंस कोटिक भान ।
कोटि मनमथ वारि छबि पर निरखि दीजत दान ॥
भ्रकुटि कोटि कोदंड रुचि अवलोकननि संधान ।
कोटि बारिज बंक नयन-कटाच्छ कोटिक बान ॥
कंबुग्रीवा रत्न-हार उदार उर मनि जान ।
जानु-बाहु उदार अति कर-पद्म सुधा-निधान ॥
स्याम तन पट पीत की छबि करै कौन बखान ।
मनहु निरतत नील घन मैं तड़ित देती भान ॥
रास-रसिक गुपाल मिलि मधु अधर करतीं पान ।
सूर ऐसे रूप बिनु को होइ इच्छुक आन ॥ ७८ ॥

बिनु गुपाल बैरिनि भइँ कुंजैं ।
तब ये लता लगतिं अति शीतल अब भईं विषम ज्वाल की पुंजैं ॥

बृथा बहति जमुना, खग बोलत, बृथा कमल फूलैं, अलि गुंजैं।
पवन,पानि,घनसार,सजीवन,दधिसुत-किरन भानु भइ भुंजैं ॥
ए ऊधौ! कहियौ माधौ सौं मदन मार कीन्हीं हम लुंजैं।
सूरदास प्रभु कौ मग जोवत, अँखियाँ भइँ बरन ज्यों गुंजैं ॥७९॥

ऊधौ क्यौं राखौं ये नैन।
सुमिरि सुमिरि गुन अधिक तपत हैं सुनत तुम्हारे बैन ॥
ये जु मनोहर बदन-इन्दु के सारद, कुमुद, चकोर।
परम तृषारत सजल स्याम-घन तन के चातक मोर ॥
मधुप मराल चरन-पंकज के गति-बिलास-जलमीन।
चक्रवाक दुति-मनि-दिनकर के मृग मुरली आधीन ॥
सकल लोक सूनौ लागत है बिनु देखैं वह रूप।
सूरदास-प्रभु नंदनँदन के नख-सिख अंग अनूप ॥ ८० ॥

उर मैं माखन चोर गड़े।
अब कैसहुँ निकसत नहिं ऊधौ तिरछे ह्वै जु अड़े ॥
जदपि अहीर जशोदानंदन तदपि न जात छँड़े।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े ॥
को बसुदेव, देवकी है को, ना जानैं औ बूझैं।
सूर स्यामसुंदर बिनु देखे और न कोऊ सूझैं ॥ ८१ ॥

उपमा नैननि एक रही।
कवि जन कहत कहत चलि आए, सुधि करि नाहिं कही ॥
कहे चकोर, मुख-बिधु बिनु जीवत, भ्रमर नहीं उड़ि जात।
हरि-मुख-कमल-कोस बिछुरे तैं, ठाले कत ठहरात ॥
आए बधन ब्याध ह्वै ऊधौ जो मृग क्यों न पलात।
भाजि जाहिं बन सघन स्याम मैं जहाँ न कोऊ घात ॥
खंजन मनरंजन न होहिं ये कबहूँ नहिं अकुलात।

पंख पसारि न होत चपल गति हरि समीप मुकुलात ॥
प्रेमि न होहिं, कवन बिधि, कहिए, झूठे ही तन आड़त ।
सूरदास मीनता कछू इक जल भर संग न छाँड़त ॥ ८२ ॥

दूर करहु बीना कर धरिबो ।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिंन होत चंद को ढरिबो ॥
बीती जाहि पै सोई जानै कठिन है प्रेम-पास को परिबो ।
जबतैं बिछुरे कमलनयन सखि रहत न नयन नीर को गरिबो ॥
सीतल चंद अगिनि सम लागत, कहिए धीर कौन बिधि धरिबो ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस बिनु सब झूठो जतननि को करिबो ॥८३॥

अति मलीन वृषभानुकुमारी ।
हरि-स्रमजल अंतरतनु भीजे ता लालच न धुआवति सारी ॥
अधमुख रहति, उरध नहिं चितवति, ज्यों गथ हारे थकित जुआरी ।
छूटे चिहुर, बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी ॥
हरि-संदेस सुनि सहज मृतक भई, इक बिरहिन दूजे अलि जारी
सूरस्याम बिनु यौं जीवति हैं ब्रजबनिता सब स्याम दुलारी ॥८४॥

ऊधौ ! ना हम बिरही, ना तुम दास ।
कहत सुनत घट प्रान रहत हैं, हरि तजि भजहु अकास ॥
बिरही मीन मरत जल बिछुरे छाँड़ि जियन की आस ।
दास-भाव नहिं तजत पपीहा बरु सहि रहत पियास ॥
प्रगट प्रीति दशरथ प्रतिपाली प्रीतम के बनवास ।
सूर स्याम सौं दृढ़व्रत कीन्हों मेटि जगत उपहास ॥ ८५ ॥

ऊधौ ! तुम अपनो जतन करौ ।
हित की कहत कुहित की लागै किन बेकाज ररौ ?
जाय करौ उपचार आपनो, हम जो कहत हैं जी की ।

कछू कहत कछुवै कहि डारत, धुनि देखियत नहिं नीकी ॥
साधु होय तेहि उत्तर दीजै, तुमसौं मानी हारि।
याही तैं तुम्हैं नँदनंदनजू यहाँ पठाए टारि ॥
मथुरा बेगि गहौ इन पाँयन, उपज्यौ है तन रोग।
सूर सुबैद बेगि किन ढूँढ़ौ भए अर्धजल-जोग ॥ ८६ ॥

ऊधौ ! अब यह समुझ भई।
नँदनंदन के अंग-अंग प्रति उपमा न्याय दई ॥
कुंतल, कुटिल भँवर, भरि भाँवरि मालति भुरै लई।
तजत न गहरु कियो कपटी जब जानी निरस गई ॥
आनन-इंदु-बरन-संपुट तजि करखें तैं न नई।
निरमोही नहिं नेह, कुमुदिनी अंतहिं हेम हई ॥
तन घनस्याम सेइ निसिबासर, रटि रसना छिजई।
सूर विवेकहीन चातक-मुख बूँदौ तौ न सई ॥ ८७ ॥

ऊधो ब्रज की दसा विचारौ।
ता पाछै यह सिद्धि आपनी जोग कथा विस्तारौ ॥
जा कारन पठए तुम माधौ सो सोचहु मनमाहीं।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौं किधौं नाहीं ॥
तुम परबीन चतुर कहियत हौ संतत निकट रहत हौ।
जल बूड़त अवलंब फेन कौ फिरि-फिरि कहा गहत हौ ॥
वह मुसुकानि, मनोहर चितवनि, कैसैं मन तैं टारौं।
जोग जुगति अरु मुकुति परमनिधि, वा मुरली पर वारौं ॥
जिहिं उर बसे स्यामसुन्दर घन क्यों निरगुन कहि आवै।
सूरदास सो भजन बहाऊँ जाहि दूसरो भावै ॥ ८८ ॥

ऊधौ ब्रज में पैठ करी।
यह निरगुन, निर्मूल गाँठरी अब किन करहु खरी ॥

नफा जानि कै ह्याँ लै आए सबै वस्तु अकरी।
यह सौदा तुम ह्वाँ लै बेंचौ जहाँ बड़ी नगरी॥
हम ग्वालिनि, गोरस दधि बेंचौ, लेहिं अबै सबरी।
सूर यहाँ कोउ गाहक नाहीं देखियत गरे परी॥ ८९ ॥

ऊधौ जो तुम हमहिं सुनायौ।
सो हम निपट कठिनई हठ कै या मन कौं समुझायौ॥
जुगुति जतन करि जीति अगह गहि जोग-पंथ लौं ल्यायौ।
भटकि फिर्‌यो बोहित के खग ज्यौं फिर हरि ही पैं आयौ॥
हम कौं सबै अहित लागतु है तुम अति हितहिं बतायौ।
सुर-सरिता-जल होम किए तैं कहा अगिनि सचु पायौ॥
अब ऐसौ उपाय उपदेसौ जिहिं जिय जात जियायौ।
बारक मिलैं सूर के प्रभु पुनि करौ आपनौ भायौ॥ ९० ॥

अलि तुम जोग बिसरि जिनि जाहु।
बाँधौ गाँठि छूटि परिहै कहुँ बहुरि उहाँ पछिताहु॥
ऐसी बस्तु अनूपम मधुकर मरम न जानैं और।
ब्रज बनिता के नाहिं काम की है तुम्हरे पै ठौर॥
जो हितु करि पठए नँदनंदन सौ हम तुमकौं दीन्यौ।
सूरदास ज्यौं बिप्र नारियर कर तें बंदन कीन्यौ॥ ९१ ॥

ऊधौ मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाइ हरि संग गए लै, मथुरा जबहिं सिधारे॥
नातरु कहा जोग हम छाँड़हिं अति रुचि कै तुम ल्याए।
हम तौ झखतिं स्याम की करनी मन लै जोग पठाए॥
अजहूँ मन अपनौ हम पावैं तुम तैं होइ तौ होइ।
सूर सपथ हमैं कोटि तिहारी कही करैंगी सोइ॥ ९२ ॥

ऊधौ हम लायक सिख दीजै।
यह उपदेस अगिनि तैं तातौ कहौ कौन बिधि कीजै॥
तुमहीं कहौ इहाँ इतननि मैं सीखनहारी को है।
जोगी जती रहित माया तैं तिनहीं यह मति सोहै।
कहा सुनत बिपरीत लोक मैं यह सब कोई कैहै।
देखौ धौं अपनैं मन, सब कोइ तुमहीं दूषन दैहै॥
चंदन अगरु, सुगंध जे लेपत का बिभूति तन छाजै।
सूर कहौ सोभा क्यौं पावै आँखि आँधरी आँजै॥ ६३॥

ऊधौ! भली करी तुम आए।
ये बातैं कहि कहि या दुख मैं ब्रज के लोग हँसाए॥
कौन काज बृन्दाबन को सुख, दही-भात की छाक।
अब वै कान्ह कूबरी राँचे बने एक ही ताक॥
मोर मुकुट, मुरली, पीतांबर पठवौ सौज हमारी।
अपनी जटाजूट अरु मुद्रा लीजै भस्म अधारी॥
वै तौ बड़े, सखा तुम उनके, तुमको सुगम अनीति।
सूर सबै मति भली स्याम की, जमुना-जल सौं प्रीति॥ ६४॥

मधुकर! हम न होहिं वे बेली।
जिनको तुम तजि भजत प्रीति बिनु करत कुसुमरसकेली॥
बारे तैं बलबीर बढ़ाई पोसी प्याई पानी।
बिन पिय-परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित-हानी॥
ये बल्ली बिहरत बृन्दाबन अरुझीं स्याम तमालहिं।
प्रेमपुष्प-रस-बास हमारे बिलसत मधुर गोपालहिं॥
जोग-समीर धीर नहिं डोलत रूपडार-ढिग लागी।
'सूर' पराग न तजत हिए तैं कमल-नयन अनुरागी॥ ६५॥

मधुकर! मन तो एकै आहि।
सो तो लै हरि संग सिधारे, जोग सिखावत काहि॥

रे सठ, कुटिल-बचन, रसलंपट ! अबलन तन धौं चाहि।
अब काहे कौं देत लोन हौ बिरहअनल तन दाहि॥
परमारथ उपचार करत हौ, बिरहब्यथा नहिं जाहि।
जाको राजदोष कफ ब्यापै दही खवावत ताहि॥
सुन्दर स्याम-सलोनी-मूरति पूरि रही हिय माहिं।
'सूर' ताहि तजि निगुन-सिंधुहि कौन सकै अवगाहि॥ ६६ ॥

मधुकर ! स्याम हमारे चोर।
मन हरि लियौ तनक चितवनि मैं चपल नयन की कोर॥
पकरे हुते जानि उर अंतर प्रेम-प्रीति के जोर।
गए छँड़ाय तोरि सब बंधन दै गए हँसनि अँकोर॥
चौंकि परी जागन निसि बीती तारनि गिनतै भोर।
'सूरदास' प्रभु सरबस लूट्यौ नागर नवल किसोर॥ ६७ ॥

ऊधौ ब्रजरिपु बहुत जिए।
जे हमरे कारन नँदनंदन हति हति दूरि किए॥
निसि कै वेष बकी सी आवति अति डर करति सकंप हिए।
तिन पय तैं तन प्रान हमारे रबि ही छिनक छिनाय लिए॥
बन बृक रूप, अघासुर सम गृह, कितहूँ तौ न बितै सकिए।
कोटिक काली सम कालिंदी, दोषन सलिल न जात पिए॥
अरु ऊँचे उच्छ्वास तृनाव्रत तिहि सुख सकल उड़ाय दिए।
केसी सकल करम केसव बिन, 'सूर' सरन काकी तकिए ?॥ ६८ ॥

ऊधौ ! भली करी गोपाल।
आपुन तौ आवत नाहीं ह्याँ वहाँ रहे यहि काल॥
चंदन चंद हुतो तब सीतल, कोकिल-सब्द रसाल।
अब समीर पावक सम लागत, सब ब्रज उल्टी चाल॥
हार, चीर, कंचुकि कंटक भए, तरनि तिलक भए भाल।

सेज सिंह, गृह तिमिर-कंदरा, सर्प सुमन-मनि-माल ।।
हम तौ न्याय सहैं एतो दुख बनवास जो ग्वाल ।
सूरदास स्वामी सुखसागर भोगी भ्रमर भुवाल ।। ९९ ।।

ऊधौ ! यह हरि कहा कर्‌यौ ।
राज काज चित दयो साँवरे, गोकुल क्यों बिसर्‌यौ ।।
जौ लौं घोस रहे तौ लौं हम संतत सेवा कीनी ।
बारक कबहुँ उलूखल बाँधे, सोई मानि जिय लीनी ।।
जौ तुम कोटि करौ ब्रजनायक, बहुतै राजकुमारि ।
तौ ये नंद पिता कहँ मिलिहैं अरु जसुमति महतारि ।।
कहँ गोधन, कहँ गोप-बृंद सब, कहँ गोरस को खैबो ।
सूरदास अब सोई करौ जिहि होय कान्ह को ऐबो ।। १०० ।।

ऊधौ मन नाहीं दस बीस ।
एक हुतो सो गयो स्याम सँग को अराध तुव ईस ।।
भई अति सिथिल सबै माधव बिनु, जथा देह बिनु सीस ।
स्वाँसा अटकि रहे आसा लगि, जीवहिं कोटि बरीस ।।
तुम तौ सखा स्यामसुंदर के, सकल जोग के ईस ।
सूरजदास रसिक की बतियाँ पुरवौ मन जगदीस ।। १०१ ।।

ऊधौ, स्यामहिं तुम लै आओ ।
ब्रजजन-चातक प्यास मरत हैं, स्वाति बूँद बरसाओ ।।
घोष-सरोज भए हैं संपुट, दिनमनि ह्वै बिगसाओ ।
ह्याँते जाव बिलंब करौ जनि, हमरी दशा सुनाओ ।।
जौ ऊधो हरि यहाँ न आवैं, हमको तहाँ बुलाओ ।
सूरदास प्रभु बेगि मिलाए, संतन मैं जस पाओ ।। १०२ ।।

ऊधौ ! जाय बहुरि सुनि आवहु कहा कह्यौ है नंदकुमार ।
यह न होय उपदेश स्याम को कहत लगावन छार ।।

निर्गुन-ज्योति कहाँ उन पाई सिखवत बारंबार।
काल्हिहि करत हुते हमरे अँग अपने हाथ सिंगार॥
ब्याकुल भए गोपालहिं बिछुरे गयो गुन ग्यान सँभार।
ताते ज्यौं भावै त्यौं बकत हौ नाहीं दोष तुम्हार॥
बिरह सहन को हम सिरजी हैं, पाहन हृदय हमार।
सूरदास अंतरगति मोहन जीवन-प्रान-अधार॥ १०३॥

ऊधौ! कह मत दीन्हो हमहिं गोपाल।
आवहु री सखि! सब मिलि सोचें ज्यौं पावैं नँदलाल॥
घर बाहर तै बोलि लेहु सब जावदेक ब्रजबाल।
कमलासन बैठहु री माई! मूँदहु नयन बिसाल॥
षट्पद कही सोऊ करि देखी, हाथ कछू नहिं आई।
सुंदर स्याम कमलदललोचन नेकु न देत दिखाई॥
फिरि भईं मगन बिरहसागर मैं काहुहि सुधि न रही।
पूरन प्रेम देखि गोपिन को मधुकर मौन गही॥
कहुँ धुनि सुनि स्रवननि चातक की प्रान पलटि तब आए।
सूर सु अब कै टेरि पपीहै बिरहिन मृतक जिवाए॥ १०४॥

ऊधौ! भली करी अब आए।
बिधि-कुलाल कीने काँचे घट तै तुम आनि पकाए॥
रंग दियो हो कान्ह साँवरे अँग-अँग चित्र बनाए।
गलन न पाए नयन-नीर तैं अवधि-अटा जो छाए॥
ब्रज करि अवाँ, जोग करि इँधन सुरति-अगिनि सुलगाए।
फूँक उसास, बिरह परजारनि, दरसन आस फिराए॥
भए सँपूरन भरे प्रेम-जल छुवन न काहू पाए।
राजकाज तैं गए 'सूर' सुनि नंदनँदन कर लाए॥ १०५॥

ऊधौ ! सरद समय हू आयो ।
बहुतै दिवस रहत चातक तकि तेउ स्वाति-जल पायो ॥
कवहुँक ध्यान धरत उर-अंतर मुख मुरली लै गावत ।
सो रसरास पुलिन जमुना की ससि देखे सुधि आवत ॥
जासौं लगन-प्रीति अंतरगत औगुन गुन करि भावत ।
हम सौं कपट, लोक-डर तातैं सूर सनेह जनावत ॥ १०६ ॥

बरु ये बदराऊ बरसन आए ।
अपनी अवधि जानि, नँदनंदन ! गरजि गगन-घन छाए ॥
सुनियत है, सुरलोक बसत सखि ! सेवक सदा पराए ।
चातक-कुल की पीर जानि कै तेउ तहाँ तैं धाए ॥
द्रुम किए हरित, हरषि बेली मिलि दादुर मृतक जिवाए ।
छाए निविड़ नीर तृन जहँ तहँ पंछिन हूँ अति भाए ॥
समझति नहिं सखि ! चूक आपनी बहुतै दिन हरि लाए ।
सूरदास स्वामी करुनामय मधुबन बसि बिसराए ॥ १०७ ॥

ऊधौ ! अब नहिं स्याम हमारे ।
मधुबन बसत बदलि से गे वे, माधव मधुप तिहारे ॥
इतनिहि दूरि भए कछु औरै, जोय-जोय मग हारे ।
कपटी कुटिल काक कोकिल ज्यों अंत भए उड़ि न्यारे ॥
रस लै भँवर जाय स्वारथ-हित प्रीतम चितहिं बिसारे ।
सूरदास उनसौं का कहिए जे तनहूँ मन कारे ॥ १०८ ॥

ऊधौ ! और कछू कहिबे को ।
सोऊ कहि डारौ पालागैं हम सब सुनि सहिबे को ॥
यह उपदेस आज लौं मैं, सखि ! स्रवन सुन्यो नहिं देख्यो ।
नीरस कटुक तपत जीवनगत, चाहत मन उर लेख्यो ॥
बसत स्याम निकसत न एक पल हिए मनोहर ऐन ।

या कहँ यहाँ ठौर नाहीं लै राखौ जहाँ सुचैन ॥
हम सब सखि गोपाल-उपासिनि हमसौं बातैं छाँड़ि ।
सूर मधुप ! लै राखु मधुपुरी कुब्जा के घर गाड़ि ॥ १०९ ॥

ऊधौ ! अँखियाँ अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस रितु आई देखत हौ बिद्‌मान ।
अबधौं कहा कियो चाहत हौ ? छाँड़हु नीरस ज्ञान ॥
सुनु प्रिय सखा स्यामसुंदर के जानत सकल सुभाव ।
जैसे मिलैं 'सूर' प्रभु हमको सो कछु करहु उपाव ॥ ११० ॥

ऊधौ ! यह मन अधिक कठोर ।
निकसि न गयो कुंभ काँचे ज्यौं बिछुरत नंदकिसोर ॥
हम कछु प्रीति-रीति नहिं जानी तब ब्रजनाथ तजी ।
हमरे प्रेम न उनको, ऊधौ ! सब रस-रीति लजी ॥
हमतैं भली जलचरी बपुरी, अपनो नेम निबाहैं ।
जलतैं बिछुरत ही तन त्यागैं जल ही जल कौ चाहैं ॥
अचरज एक भयो सुनो, ऊधौ ! जल बिनु मीन जियो ।
सूरदास प्रभु आवन कहि गए मन विश्वास कियो ॥ १११ ॥

हरिसौं भलो सो पति सीता को ।
बन-बन खोजत फिरे बंधु-सँग कियो सिंधु बीता को ॥
रावन मार्‌यो, लंका जारी, सुख देख्यो भीता को ।
दूत हाथ उन्हैं लिखि न पठायो निगम ज्ञान गीता को ॥
अबधौं कहा परेखो कीजै कुबजा के मीता को ।
जैसे चढ़त सबै सुधि भूली, ज्यौं पीता, चीता को ॥
किन्हीं कृपा जोग लिखि पठयो, निरखि पत्र री ! ताको ।
सूरजदास प्रेम कह जानै लोभी नवनीता को ॥ ११२ ॥

मधुबनियाँ लोगनि को पतिश्राय ?
मुख औरै अंतरगत औरै पतियाँ लिखि पठवत हैं बनाय ॥
ज्यौं कोइलसुत काग जियावत भाव भगति भोजनहिं खवाय ।
कुहू कुहाय श्राए बसंत रितु, अंत मिलै कुल अपने जाय ॥
जैसे मधुकर पुहुप-बास लै फेरि न बूझै बातहु आय ।
सूर जहाँ लौं स्यामगात हैं तिन सौं क्यौं कीजिए लगाय ॥११३॥

सुनियत मुरली देखि लजात ।
दूरहिं तैं सिंहासन बैठे, सीस नाय मुसकात ॥
सुरभी लिखी चित्र भीतिन पर तिनहिं देखि सकुचात ।
मोरपंख को बिजन बिलोकत बहरावत कहि बात ॥
हमरी चरचा जो कोउ चालत, चालत ही चपि जात ।
सूरदास ब्रज भले बिसार्यो, दूध-दही क्यौं खात ॥११४॥

जाहिरी सखी ! सीख सुनि मेरी ।
जहँ बसत जदुनाथ जगतमनि बारक तहाँ आव दै फेरी ॥
तू कोकिला कुलीन कुसलमति जानति बिथा बिरहिनी केरी ।
उपवन बैठि बोलि मृदुबानी बचन बिसाहि मोहिं करु चेरी ॥
प्रानन के पलटे पाइय जस, सैंति बिसाहु सुजस की ढेरी ।
नाहिंन कोउ और उपकारी सब बिधि बसुधा हेरी ॥
करियो प्रगट पुकार द्वार ह्वै अबलनि आहि अनँग अरि घेरी ।
ब्रज लै आउ सूर के प्रभु कौ गावहिं कोकिल ! कीरति तेरी ॥११५॥

मधुकर ! तुम रसलंपट लोग ।
कमल कोस मैं रहत निरंतर हमहिं सिखावत जोग ॥
अपने काज फिरत ब्रज-अंतर निमिष नहीं अकुलात ।
पुहुप गए बहुरै बेलिन के नेकु न नेरे जात ॥

तुम चंचल हौ, चोर सकल अँग बातन क्यौं पतियात।
सूर बिधाता धन्य रच्यो जो मधुप स्याम इक गात ॥११६॥

देखियति कालिंदी अति कारी।
कहियो पथिक! जाय हरिसौं ज्यों भई बिरह-जुर-जारी ॥
मनु पलिका पै परी धरनि धँसि, तरंग तलफ तनुभारी।
तटबारू उपचार-चूर मनो स्वेद-प्रवाह पनारी ॥
बिगलित कच, कुस-कास पुलिन मनो, पंक जु कज्जल सारी।
भंवर मनौं तहँ भ्रमत फिरत अति दिसि दिसि दीन दुखारी ॥
निसि दिन चकई-बादि बकत अति, फेन मनौ अनुहारी।
सूरदास प्रभु जो जमुना गति, सो गति भई हमारी ॥११७॥

सखी री! हरिहि दोष जनि देहु।
जातैं इते मान दुख पैयत हमरेहि कपट सनेहु ॥
विद्यमान अपने इन नैनन्ह सूनो देखति गेहु।
तदपि सखी ब्रजनाथ बिरह उर भिदि न होत बड़ बेहु ॥
कहि कहि कथा पुरातन ऊधौ! अब तुम अंत न लेहु।
सूरदास तन तो यों ह्वै है ज्यौं फिरि फागुन मेहु ॥११८॥

तुम्हरे बिरह, ब्रजनाथ अहो प्रिय, नयनन नदी बढ़ी।
लीने जात निमेष कूल दोउ एते मान चढ़ी ॥
गोलक नव नौका न सकत चलि स्यों सरकति बढ़ि बोरति।
ऊरध स्वाँस समीर, तरंगन तेज तिलक-तरु तोरति ॥
कज्जल कीच कुचील किए तट अंतर अधर कपोल।
रहे पथिक जो जहाँ सो तहाँ थकि हस्त चरन मुख-बोल ॥
नाहिंन और उपाय रमापति बिन दरसन छन जीजै।
अस्त्रु-सलिल बूड़त सब गोकुल सूर सुकर गहि लीजै ॥११९॥

और सकल अंगनि तैं ऊधौ ! अँखियाँ अधिक दुखारी ।
अतिहि पिराति सिराति न कबहूँ, बहुत जतन करि हारी ॥
चितवत रहति निमेष न लावति, बिथा बिकल भई भारी ।
भरि गईं बिरह-बाइ बिनु दरसन इकटक रहति उघारी ॥
रे रे अलि ! गुरु ग्यान-सलाकहिं क्यौं सहि सकहिं तुम्हारी ।
सूर सुअंजन आँजि रूप-रस आरति हरौ हमारी ॥१२०॥

बारक कान्ह करौ किन फेरो ?
दरसन दै मधुबन को सिधारो, सुख इतनों बहुतेरो ॥
भलेहि मिले बसुदेव देवकी जननि जनक निज कुटुँब घनेरो ।
केहि अवलंब रहैं हम ऊधौ ! देखि दुःख नँद जसुमति केरो ॥
तुम बिनु को अनाथ प्रतिपालन, जाजरि नाव, कुसंग सबेरो ।
गए सिंधु को पार उतारै, अब यह 'सूर' थक्यो ब्रज बेरो ॥१२१॥

सब जल तजे प्रेम के नाते ।
तऊ स्वाति चातक नहिं छाँड़त प्रगट पुकारत ताते ॥
समुझत मीन नीर की बातैं तऊ प्रान हठि हारत ।
सुनत कुरंग नादरस पूरन, यदपि ब्याध सर मारत ॥
निमिष चकोर नयन नहिं लावत, ससि जोवत जुग बीते ।
कोटि पतंग जोति बपु जारे, भए न प्रेम-घट रीते ॥
अब लौं नहिं बिसरीं वे बातैं सँग जो करीं ब्रजराज ।
सुनि ऊधौ ! हम 'सूर' स्याम को छाँड़ि देहिं केहि काज ॥ १२२ ॥

तुमहिं मधुप ! गोपाल-दुहाई ।
कबहुँक स्याम करत ह्याँको मन,किधौं निपट चित सुधि बिसराई॥
हम अहीरि मतिहीन बापुरी हटकत हू हठि करहिं मिताई ।
वै नागर मथुरा निरमोही, अँग-अँग भरे कपट चतुराई ॥

साँची कहहु देहु स्रवनन सुख, छाँड़हु जिया कुटिल धूताई।
'सूरदास' प्रभु बिरद-लाज धरि मेटहु ह्याँ की नेकु हँसाई ॥१२३॥

गोपालहिं लै आवहू मनाय।
अबकी बेर कैसेहु करि ऊधौ! करि छलबल गहि पाय ॥
दीजौ उनहिं सुसारि उरहनों संधि संधि समुझाय।
जिनहिं छाँड़ि बढ़िया महँ आए ते बिकल भए जदुराय ॥
तुम सौं कहा कहौं, हो मधुकर! बातैं बहुत बनाय।
बहियाँ पकरि सूर के प्रभु की, नंद को सौंह दिवाय ॥ १२४ ॥

बिरही कहँ लौं आपु सँभारै।
जब तैं गंग परी हरिपद तैं बहिबो नाहिं निबारै ॥
नयनन तै रबि बिछुरि भँवत रहै, ससि अजहूँ तन गारै।
नाभि तैं बिछुरे कमल कंट भए, सिंधु भए जरि छारै ॥
बैन तैं बिछुरी बानि अबिधि भई, बिधि ही कौन निबारै।
सूरदास सब अँग तैं बिछुरी केहि बिद्या उपचारै ॥ १२५ ॥

कै तुम सौं छूटैं लरि, ऊधौ! कै रहिए गहि मौन।
एक हम जरैं, जरे पर जारत, बोलहु कुबची कौन ॥
एक अंग मिले दोऊ कारे, काको मन पतियाए।
तुम सी होय सो तुम सौं बोलै, लीने जो गहि आए ॥
जा काहू कौं जोग चाहिए सो लै भस्म लगावै।
जिन्ह उन ध्यान नंदनंदन को तिन्ह क्यों निर्गुन भावै ॥
कहौ सँदेस सूर के प्रभु को, यह निर्गुन अँधियारी।
अपनी बोयो आप लूनिए, तुम आपुहि निरबारी ॥ १२६ ॥

मधुकर! मन सुनि जोग डरै।
तुमहू चतुर कहावत अति ही, इतो न समुझि परै ॥

और सुमन जो अनेक सुगन्धित, सीतल रुचि सो करै।
क्यौं तू कोकनद बनहि सरै औ और सबै अनरै ॥
दिनकर महा प्रताप पुंजवर, सब को तेज हरै।
क्यौं न चकोर छाँड़ि मृग-अंकहि वाको ध्यान धरै ॥
उलटोइ ग्यान सबै उपदेसत, सुनि सुनि जीय जरै।
जंबू-वृक्ष कहौ क्यों लंपट ! फलवर अंब फरै ॥
मुक्ता अवधि मराल प्रान है, जौ लगि ताहि चरै।
निघटत निपट, सूर ज्यौं जल बिनु व्याकुल मीन मरै ॥ १२७ ॥

सखी री ! मथुरा में द्वै हंस।
एक अक्रूर और ये ऊधौ, जानत नीके गंस।
ये दोउ छीर नीर पहिचानत इनहि बधायो कंस।
इनके कुल ऐसी चलि आई, सदा उजागर बंस ॥
अजहूँ कृपा करौ मधुबन पर जानि आपनो अंस।
'सूर' सुयोग सिखावत अबलन्ह, सुनत होय मन भ्रंस ॥ १२८ ॥

ऊधौ मन माने की बात।
दाख छुहारा छाँड़ि अमृत-फल बिष-कीरा बिष खात ॥
जौ चकोर कौ देइ कपूर कोउ तजि अँगार अघात ?
मधुप करत घर कोरि काठ मैं बँधत कमल के पात ॥
ज्यौं पतंग हित जानि आपनौ दीपक सौं लपटात।
'सूरदास' जाकौ मन जासौं सोई ताहि सुहात ॥ १२९ ॥

कर-कंकन तैं भुज-टाँड़ भई।
मधुबन चलत स्याम मनमोहन आवन-अवधि जो निकट दई ॥
जोहति पंथ मनावति संकर, बासर निसि मोहिं गनत गई।
पाती लिखत बिरह तन व्याकुल कागर ह्वै गयो नीरमई ॥

ऊधौ ! सुखके बचनन कहियो हरिसौं सूल नित प्रतिहि नई।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरस को बिरह बियोगिनि बिकल भई ॥ १३० ॥

ऊधौ जू ! देखे हौ ब्रज जात ।
जाय कहियो स्याम सौं या बिरह को उत्पात ॥
नयनन कछू नहिं सूझई, कछु स्रवन सुनत न बात ।
स्याम बिन आँसुवन बूड़त दुसह धुनि भई बात ॥
आइए, तो आइए, जिव बहुरि सरीर समात ।
सूर के प्रभु बहुरि मिलिहौ पाछे हू पछितात ॥ १३१ ॥

ऊधौ ! इतनी कहियो जाय ।
अति कृस गात भई हैं तुम बिनु परम दुखारी गाय ॥
जल-समूह बरसति दोउ आँखिनि हँकरति लीने नाँव ।
जहाँ-जहाँ गोदोहन करते सूँघति सोई-सोई ठाउँ ॥
परति पछार खाइ तेहि-तेहि थल अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहुँ सूर काढ़ि डारी हैं बारि मध्य तैं मीन ॥ १३२ ॥

ऊधौ ! अब जो कान्ह न ऐहैं ।
जिय जानौ अरु हृदय बिचारौ हम न इतो दुख सैहैं ॥
बूझौ जाय कौन के ढोटा, का उत्तर तब दैहैं ।
खायो खेल्यो संग हमारे, ताको कहा बनैहैं ॥
गोकुलमनि मथुरा के बासी कौं लौं झूँठो कैहैं ।
अब हम लिखि पठवन चाहति हैं वहाँ पाति नहिं पैहैं ॥
इन गैयन चरिबो छाँड़्यो है जौ नहि लाल चरैहैं ।
एते पै नहिं मिलत सूर प्रभु फिरि पाछे पछितैहैं ॥ १३३ ॥

ऊधौ ! जो हरि हितू तिहारे ।
तौ तुम कहियो जाय कृपा कै जे दुख सबै हमारे ॥

तन तरुवर ज्यौं जरति बिरहिनी, तुम दव ज्यौं हम्ह जारे।
नहिं सिरात,नहि जरत छार ह्वै सुलगि सुलगि भए कारे ॥
जद्यपि उमगि प्रेम जल भिजवत बरषि-बरषि घन-तारे।
जौ सींचे यहि भाँति जतन करि तौ इतने प्रति पारे ॥
कीर, कपोत, कोकिला, खंजन बधिक-वियोग बिडारे।
इन दुःखन क्यौं जियहिं 'सूर' प्रभु ब्रज के लोग विचारे ॥१३४॥

जौ पै राखति हौं पहिंचानि।
तौ बारेक मेरे मोहन को मोहिं देहु दिखाई आनि ॥
तुम रानी बसुदेव गिरहिनी हम अहीर ब्रजबासी।
पठै देहु मेरी लाल लड़ैतो बारौं ऐसी हाँसी ॥
भली करी कंसादिक मारे अवसर-काज कियो।
अब इन गैयन कौन चरावै भरि-भरि लेत हियो ॥
खान, पान, परिधान, राज सुख के तेउ लाड़ लड़ावै।
तदपि सूर मेरो यह बालक माखन ही सचु पावै ॥१३५॥

अब अति चकितवंत मन मेरौ।
आयो हौ निरगुन उपदेसन भयौ सगुन को चेरौ ॥
जो मैं कह्यौ ज्ञान गीता कौ तुमहिं न परस्यौ नेरौ।
अति अज्ञान न कछु कहि आयौ दूत भयौं हरि केरौ ॥
निज जन जानि मानि जननी तुम कीजौ नेह घनेरौ।
'सूर' मधुप उठि चल्यौ मधुपुरी बोरि जोग कौ बेरौ ॥१३६॥

माधव सुनौ ब्रज को नेम।
बूझि हम षट मास देख्यो गोपिकन को प्रेम ॥
हृदय तैं नहिं टरत उनके स्याम राम-समेत।
अस्रु-सलिल-प्रवाह उर पर अरघ नयनन देत ॥
चीर अंचल, कलस कुच, मनो पानिपदुम चढ़ाय।

प्रगट लीला देखि, हरि के कर्म उठतीं गाय।
देह गेह-समेत अर्पन, कमल लोचन-ध्यान।
सूर उन के भजन आगे, लगै फीको ग्यान॥ १३७॥

कहँ लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम! तुम बिनु उन लोगन जैसे दिवस बिहात॥
गोपी, ग्वाल, गाय, गोसुत सब मलिन बदन, कृसगात।
परम दीन जनु शिशिर-हेम-हत अंबु जगत बिनु पात॥
जो काहू आवत देखत हैं सब मिलि बूझत कुसलात।
चलन न देत प्रेम-आतुर उर, फिरि चरनन लपटात॥
पिक, चातक, बन बसन न पावहिं, बायस बलिहि न खात।
सूरदास संदेसन के डर पथिक न वा मग जात॥ १३८॥

उन मैं पाँच दिवस जो बसिए।
नाथ! तिहारी सौं जिय उमगत, फेरि अपनपो कस ये?
वह लीला बिनोद गोपिन के देखे ही बनि आवै।
मो को बहुरि कहाँ वैसे सुख! बड़ भागी सो पावै॥
मनसि, बचन, कर्मना, कहत हौं नाहिंन कछु अब राखी।
सूर काढ़ि डार्‌यौ हौं ब्रज तैं दूध-माँझ की माखी॥ १३९॥

चित दै सुनौ, स्याम प्रवीन।
हरि तिहारे बिरह राधे, मैं जो देखी छीन॥
कहन को संदेस सुन्दरि गवन मो तन कीन।
छुटी छुद्रावलि, चरन अरुझे, गिरी बलहीन॥
बहुरि उठि सँभारि, सुभट ज्यौं परम साहस कीन॥
बिन देखे मनमोहन मुखरो सब सुख उनको दीन।
'सूर' हरि के चरन-अंबुज रहीं आसा-लीन॥ १४०॥

माधव ! यह ब्रज को ब्यौहार।
मेरो कह्यो पवन को भुसभयो, गावत नंदकुमार ॥
एक ग्वारि गोधन लै रैंगति, एक लकुट कर लेति।
एक मंडली करि बैठारति, छाक बाँटिकै देति ॥
एक ग्वारि नटवर बहु लीला, एक कर्म-गुन गावति ।
कोटि भाँति कै मैं समुझाई नैकु न उर मैं ल्यावति ॥
निसिबासर ये ही ब्रत सब ब्रज दिन दिन नूतन प्रीति।
'सूर' सकल फीको लागत है देखत वह रस रीति ॥ १४१ ॥

कहिबे मैं न कछू सक राखी।
बुधि बिबेक अनुमान आपने मुख आई सो भाखी ॥
हौं पचि कहतो पहर एक मैं, वै छन माहिं अनेक ।
हारि मानि उठि चल्यों दीन ह्वै छाँड़ि आपनी टेक ॥
कंठ बचन न बोलि आयो, हृदय परिहस-भीन ।
नयन भरि जो रोय दीन्हों ग्रसित-आपद दीन ॥
श्री मुख की सिखई ग्रंथन की कथि सब भई कहानी।
एक होय तेहि उत्तर दीजै 'सूर' उठी अबुहानी ॥ १४२ ॥

कहौ तो सुख आपनो सुनाऊँ।
ब्रज जुवतिन कहि कथा जोग की क्यौं न इतौ दुख पाऊँ ॥
हौं इक बात कहत निर्गुन की वाही मैं अटकाऊँ ।
वै उमड़ीं बारिधि तरंग ज्यौं जाकी थाह न पाऊँ ॥
कौन-कौन को उत्तर दीजै तातैं भज्यों अगाऊँ।
वै मेरे सिर पाटी परहिं कंथा काहि ओढ़ाऊँ ॥
एक आँधरी, हिय की फूटी, दौरै पहिरि खराऊँ।
सूर सकल ब्रज परदरसी, हौं बारह खड़ी पढ़ाऊँ ॥ १४३ ॥

माधव जू मैं अति सचु पायो।
अपने जानि सँदेस-ब्याज करि ब्रजजन-मिलन पठायो॥
छमा करौ तौ करौं बीनती जो उत देखि हौं आयो।
श्रीमुख ग्यान पंथ जो उचर्‌यो तिन पै कछु न सुहायो॥
सकल निगम-सिद्धांत जन्म-स्रम स्यामा सहज सुनायो।
नहिं स्रुति, सेस, महेस प्रजापति, जो रस गोपिन गायो॥
कटुक कथा लागी मोहिं अपनी, वा रस-सिंधु समायो।
उत तुम देखे और भाँति मैं, सकल तृषाहि बुझायो॥
तुम्हरी अकथ-कथा तुम जानो हम जन नाहिं बसायो।
'सूरदास' सुंदर पद निरखत नयनन नीर बहायो॥ १४४॥

दिन दस घोष चलहु गोपाल।
गैयन की अवसेर मिटावहु भेंटहु भुज भरि ग्वाल॥
नाचत नहीं मोर वा दिन तें आए बरषा काल।
मृग दूबरे दरस तुम्हरे बिनु, सुनत न बेनु रसाल॥
बृंदावन भावतो तुम्हारो देखहु स्याम तमाल।
'सूरदास' मैया जसुमति के फिरि आवहु नँदलाल॥ १४५॥

ऊधौ! मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की सुंदर कगरी अरु कुंजन की छाहीं॥
वै सुरभी, वै वच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि-गहि बाहीं॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि-मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं॥
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि-कहि पछिताहीं॥ १४६॥

तबतैं बहुरि न कोऊ आयो।
वहै जो एक बार ऊधौ पै कछुक सोध सो पायो॥
यहै विचार करैं, सखि, माधव इतो गहरु क्यौं लायो।
गोकुलनाथ कृपा करि कबहूँ लिखियौ नाहिं पठायो॥
अवधिआस एती करि यह मन अब जैहै बौरायो।
सूरदास प्रभु चातक बोल्यो, मेघन अंबर छायो॥ १४७॥

हमारे स्याम चलन चहत हैं दूरि।
मधुबन बसत आस ही सजनी! अब मरिहैं जो बिसूरि॥
कौने कही कहाँ सुनि आई? केहि दिसि रथ की धूरि।
संगहि सबै चलौ माधव के नातरु मरिबो भूरि॥
पच्छिम दिसि एक नगर द्वारिका, सिंधु रह्यो जल पूरि।
सूर स्याम क्यों जीवहिं बाला जात सजीवन मूरि॥ १४८॥

उती दूरि तें को आवै हो।
जाके हाथ सँदेस पठाऊँ सो कहि कान्ह कहाँ पावै हो॥
सिंधुकूल एक देस कहत हैं देख्यो सुन्यो न मन धावै हो।
तहाँ रच्यो नवनगर नंद सुत पुरि द्वारिका कहावै हो॥
कंचन के सब भवन मनोहर, राजा रंक न तृन छावै हो।
ह्वाँ के बासी लोगन कौ व्रज को बसिबो नहिं भावै हो॥
बहुबिधि करत बिलाप बिरहिनी बहुत उपाव न चित लावै हो।
कहा करौं कहँ जाउँ सूर प्रभु, को मोहिं हरि पै पहुँचावै हो॥ १४९॥

बलैया लैहौं हो बीर बादर।
तुम्हरे रूप सम हमरे प्रीतम गए निकट जल-सागर॥
पालागौं द्वारका सिधारौ बिरहिनि के दुखदागर।
ऐसो संग सूर के प्रभु को करुनाधाम उजागर॥ १५०॥

नैना भए अनाथ हमारे।
मदन गुपाल वहाँ हैं, सजनी ! सुनियत दूर सिधारे ॥
वै जलहर, हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक-चकोर, स्याम घन, बदन सुधानिधि प्यारे ॥
मधुबन बसत आस दरसन की जोइ-जोइ मग हारे।
सूर स्याम प्रभु करी प्रिय ऐसी, मृतक हुते पुनि मारे ॥ १५१ ॥

टिप्पणी

यशोदा-विलाप—हिंदी-कवियों ने कृष्ण-वियोग-जन्य दुख से दुखी गोपियों के उद्गारों को खूब विस्तार दिया है; परन्तु उनके माता-पिता की दयनीय दशा देखकर भी वे उन्हें भूल-सा गये हैं। सूरदास ने भी इने-गिने पद लिखकर ही इस प्रसंग को समाप्त कर दिया है। संभव है, इसका कारण मधुर-भाव की उपासना संबंधी उनका ध्येय हो; परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा करके उन्होंने काव्य का एक अत्यंत मार्मिक विषय खो दिया। आधुनिक कवियों में पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रियप्रवास' नामक अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में इस विषय का यथोचित विस्तृत वर्णन करके अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। इनका 'यशोदा-विलाप' हिंदी साहित्य की अनूठी चीज है।

पद १—माता यशोदा का विकल हृदय इन पंक्तियों में रो रहा है। पुत्र के लिए माता की चिंता कितनी करुण है!

धाय=धात्री, दाई। करम करम (क्रम-क्रम)=धीरे-धीरे, बहलाने से। टेव=आदत। तऊ मोहिं कहि आवै=तब भी मैं कहे देती हूँ; तब भी मुझसे कहे बिना रहा नहीं जाता। निसि-बासर=रात-दिन। अलक लड़ैते=बहुत दुलारे, परम प्रिय। करत संकोच=व्रज की बाल-लीला में कृष्ण कहीं संकोच करते नहीं मिलते; फिर भी माता जो उन्हें संकोची प्रकृति का कह रही है। कारण, पुत्र कितना ही बड़ा हो जाय, माता की ममता उसे बालक ही समझती है। दूसरी बात यह है कि नये सम्बन्धियों के सामने बालक संकोच करते भी हैं।

पद २—नेति (नेती)=मथानी की रस्सी। सूनैं भवन=एकांत में माता को पुत्र की याद आ जाना कितना स्वाभाविक है! गुन गुनि सूल सहै=कृष्ण के गुणों और भोली बातों को याद करके बहुत दुखी होती है। उरहन=उलाहना, बालक के बहाने चार गोपियाँ घर में आ जाती थीं और सबेरे से ही घर घेरे रहती थीं, पर अब तो कोई आता ही नहीं। मुनि मनसाहू न गहै=जिन आनन्दों का अनुभव मुनि भी नहीं कर पाते। कौड़ी हू न लहै= दो कौड़ी का भी नहीं है अर्थात् बिलकुल बेकार है।

पद ३—पुत्र को जो चीजें प्यारी थीं, उन्हें देखकर माता को पुत्र की याद आना, उसकी ममता उमड़ना, आँसू आ जाना नितांत स्वाभाविक है। नवनीत=माखन। आगो लैहे=चाव और दुलार से स्वागत करना। मो-सी=मेरे समान लाड़-प्यार रखनेवाली।

गोपी-विरह—अपनी बाल्यावस्था और शैशवावस्था के दिन कृष्ण ने जिन गोपियों के साथ बिताये थे, जिनके साथ वे खेला करते थे, नाचते-गाते थे, एक दिन कंस के बुलाने पर उन्हीं प्यारी गोपियों को छोड़कर वे मथुरा जाने पर विवश होते हैं। उनके जाते ही सरल-हृदया गोपियों की दशा बड़ी दयनीय हो जाती है। कृष्ण ने उनको प्रेम करना सिखलाया था, उन्हें प्रेम करने का अवसर दिया था, प्रेम करने को उन्हें उत्साहित किया था। गोपियों ने प्रिय कृष्ण के साथ रासलीला अवश्य की, परंतु इतने से ही उनकी प्रेम-वृत्ति को संतोष न हुआ—इससे तो उनकी बढ़ती हुई प्रेमाग्नि में घी ही पड़ा। इसी प्रकार यमुना-तट की शीतल कुंजों का कृष्ण ने उन्हें मार्ग दिखाया। दान-लीला प्रसंग से भी उनके प्रेम को प्रोत्साहनमात्र मिला। इसी समय जब उनके मन में तरह-तरह की उमंगें उठ रही थीं, भविष्य के

सम्बन्ध में अत्यन्त मनोहर और लुभावने स्वप्न वे देख रही थीं, तभी उनकी समस्त आशाओं का केंद्र, उनका प्यारा कृष्ण उन्हें रोती-बिलखती छोड़कर मथुरा चला गया, जाने पर विवश हुआ। फलत: गोपियों का प्रेम-पाठ अधूरा रह गया, उन्हें तत्सम्बन्धी अनुभव का अवसर न मिला। उनके मन की मन में रह गयी; स्वयं वे मन मसोसकर रह गयीं। उन्हें ऐसा मालूम होने लगा, जैसे उनके शरीर का रक्त कोई खींच ले गया हो। जीवन उन्हें खोखला लगने लगा। दिन-रात अनमनी-सी होकर वे मथुरा की ओर ताका करती थीं। अब उन्हें जीवित रखनेवाले कृष्ण के लौट आने की आशा थी। नंदजी उनके साथ मथुरा गये थे और ब्रजवासियों को यह सांत्वना दे गये थे कि मैं शीघ्र ही कृष्ण के साथ वापस आ जाऊँगा। गोपियों के जीवन का सहारा यही आशा थी। नित्यप्रति उनके आने की राह उत्सुकता से देखी जाने लगी। आते-जाते सबकी दृष्टि मथुरा-पथ की ओर ही लगी। गोप-बालक पेड़ों पर चढ़कर दूर तक उसी ओर देखा करते; कभी मीलों तक यह देखने दौड़े चले जाते कि कृष्ण आ तो नहीं रहे हैं। परन्तु जब कृष्ण के आने की सूचना न मिलती, तो बेचारे निराश, खिन्नमुख लौट आते।

अन्त में एक दिन नंदजी लौट आये। गोपी-ग्वाल सभी उनके आने की बात सुनते ही कृष्ण-दर्शन-लालसा से दौड़ पड़े। परन्तु नंदजी तो अकेले लौटे थे। यह देखते ही ब्रजवासियों के धैर्य का बाँध टूट गया। उनकी आशा पर पानी पड़ गया। उनकी सारी उमंगें नष्ट हो गयीं, जीवन में उनके लिए कोई आकर्षण न रहा। कृष्ण की प्रिय स्मृति में अब वे घुलने लगीं। उनके सामने अब कृष्ण की मूर्ति तो न थी, उनकी मधुर स्मृति साकार रहकर उन्हें लुभाने लगी। घर में, वन में सर्वत्र कृष्ण के साथ वे घूमी

थीं; खेली थीं। इन स्थानों में उन्हें अब भी जाना पड़ता था। पहले यहाँ वे प्रेम की मधुर माधुरी का पान करती थीं, अब वे अस्तव्यस्त स्थिति में पागलों-सी घूमने लगीं। घर उन्हें काटने दौड़ता था, वन साँय-साँय करता था। मधुवन, करीलकुंज, वंशीवट, सभी रम्य रंगस्थल अब उनके लिए दुखदायी थे। प्रिय कृष्ण के पास उन्होंने सँदेशे भेजने आरम्भ किये, माता ने भी कुशल-समाचार मँगाया, एक बार प्यारा और भोला मुख दिखला जाने को कहा। संदेशों की संख्या और पूछनेवालों का ताँता इतना बढ़ गया कि परेशान होकर पथिकों ने वह मार्ग ही छोड़ दिया। गोपियों ने अब पवन, मेघ, कोयल आदि से संदेशा ले जाने की प्रार्थना की। परन्तु सब व्यर्थ। कृष्ण का उन्हें कोई संदेशा न मिला। इससे जैसे उनका हृदय फट गया; रोते-रोते आँख के आँसू सूख गये; शरीर क्षीण हो गया; कान्ति नष्ट हो गयी। सारा ब्रजमण्डल शोक से कातर हो गया। जड़ प्रकृति भी इस दुख को न सह सकी; यहाँ तक कि यमुना तो उनके वियोग में नीली हो गयी। गोपियों की इसी विरह-व्यथा का मार्मिक वर्णन आगे के पदों में किया गया है।

पद ४—कन (कण)=दाने। चोप (चेंप)=लासा, गाढ़ा चिपकनेवाला रस। काँपो (कंपा)=बाँस की पतली तीलियों से बनता है। इनमें लासा लगाकर बहेलिए चिड़िया फँसाते हैं। टटवारी=टट्टी। बंक बिलोकनि=तिरछी चितवन। लूक=हूक, छापा मारना, अचानक चोट करना। मुरली······ सम्हारी=बहेलिया टट्टी में घेरकर लासे लगे कंपे की चोट से चिड़ियों को फँसाता है, वैसे ही कृष्ण ने मुरली के मधुर स्वर से हमें आकर्षित और मोरचंद्र पर मुग्ध करके, तिरछी चितवन से हमें चिड़ियों की तरह घायल किया है। तलफत=तड़पते। सार=

सुधि, खबर। कलप तरोवर=कल्पवृक्ष, सुख रूपी वृक्ष। आशय यह कि कृष्ण के चले जाने पर कभी सुख से हम न रह सकीं।

पद ५—काँती=छुरी, तलवार। परसत=स्पर्श से, छूते ही। कोउ······छाती=कृष्ण का पत्र मिलने पर वे उसे कैसे पढ़ें? यदि वे उसे हाथ में लें, तो विरह-अग्नि की प्रचंडता के कारण वह छूते ही जल जायगा और यदि बिना छुए ही उसे पढ़ें, तब वह आँसुओं से भींग जायगा। वे दोनों दशाओं में दुखी हैं। जब उन्हें प्रिय कृष्ण का पत्र नहीं मिलता, तब भी और जब पत्र मिलता है, तब भी। बिहारी ने भी दोनों प्रकार के दुख का इस प्रकार वर्णन किया है—

> **इन दुखिया अँखियान को सुख सिरज्यो ही नाहिं।**
> **देखे बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं॥**

मदन-सर घाती=कामदेव के कठिन बाणों से पीड़ित।

पद ६—नहिं अवन करे=जो पथिक संदेशा ले जाते हैं, वे फिर लौटते ही नहीं। समोधे=समझा-बुझा दिया। मरे=यह शब्द गोपियों की खीझ प्रकट करता है। मसि खूँटी=पत्र लिखने की स्याही खत्म हो गई। कागर=कागज। सर=सरकंडा, कलम। दौ=दावानल, आग। पलक कपाट परे=आँखें बन्द करके पत्र कैसे लिखा जा सकता है?

पद ७—यह पद बड़ा मार्मिक है। राधा को अपने पिछले मान की बात याद करके कितनी मार्मिक व्यथा हो रही है। सूल=दुख, पछतावा। गुसा गही=नाराज हो गये। धरनि ढही=पृथ्वी पर गिर पड़ी।

पद ८—रातें-राते=लाल-लाल। झार=आग की ज्वाला। डोलौं=घूमना। सरिता=नदी। घरनाऊँ=लंबे बाँस में उलटे

घड़े बाँधकर बनी हुई नाव। अधरन पर आय=मुहा० प्राण निकलने को ही हैं।

पद ६—उन देसनि=जहाँ कृष्ण रहते हैं। सेषनि=साँपों ने। धर=धरा, पृथ्वी। विसेषनि=बहुत अधिक, सब। सहेसनि—हर्षित होकर।

पद १०—मोरउ=मोर भी। बैर परे=पीछे पड़े हैं, बैरी हैं। बरजे नहिं मानत=रोकने से भी नहीं मानते। सीस धरे=अपना मुकुट बनाया था ; सिर चढ़ाना मुहावरा भी है। इसीलिए आगे कहा है कि कृष्ण ने इन्हें ढीठ कर दिया। कौन गुन=किस कारण ; किस घमंड से। रहत अरे=अड़े रहते हैं।

पद ११—ताय=ताहि, उसको। सारँग-रिपु=कमल का शत्रु। चंद्र=चंद्रमुख। बिहाय=बितना। यह समौ गए=आशय युवावस्था से है। 'साकेत' में ऐसी ही बात उर्मिला ने भी कही है।

पद १२—अनुहारि=सूरत के, रूप-रंग के। उनै आए=जल भरे हुए पृथ्वी के पास आ गये हैं। दामिनि=बिजली। दसन=दाँत। बारि=जल।

पद १३—बिन ही रितु=बादल तो समय पर ही बरसते हैं ; परन्तु नेत्र हर समय बरस रहे हैं। तारे=आँखों की पुतलियाँ। ऊरध (उर्ध्व)=ऊपर की, लंबी। समीर=हवा। द्रुम=वृक्ष। तेज हवा बहुत से वृक्षों को गिरा देती है ; उसी प्रकार लंबी साँस ने तरह-तरह के सुख-रूपी वृक्षों को गिरा दिया है। सदन=घर। बचन खग=वचनरूपी पक्षी इस वर्षा से बचने के लिए मुँह में ही छिपकर बैठे हैं ; बाहर नहीं निकलते। आशय यह कि गोपियाँ किसी से बोलती-चालती नहीं। कंचुकि=स्त्रियों के पहनने की कुरती। निनारे=न्यारे, अलग-अलग। शिव की

परनकुटी=गोपियों के उरोजों से उपमा दी है। गिरिवरधर= यह पद साभिप्राय है। एक बार मेघों के बहुत अधिक बरसने पर जल में डूबते हुए व्रज की रक्षा जिस गिरिवरधारी ने की थी, वही आज भी व्रज की रक्षा कर सकता है। ऐसा परोपकार करने तो उसे आ जाना चाहिए।

पद १४—बिनु पदत्रान=नंगे पैर। बचन=दोष, अपराध। गोपियों की यह उक्ति बड़ी चमत्कारपूर्ण है।

पद १५—परतीति=विश्वास। बिहंगम=पक्षी, संकेत खंजन की ओर है। आँखों की उपमा खंजन से दी जाती है। स्याम मई=बादलों की तरह ये श्याम-मय क्यों न हो गये; श्याम की प्रीति में क्यों न रँग गये। क्रूर=निष्ठुर, कठोर। कुटिल=दुष्ट। सित-मेचक=सफेद और काले, दुरंगी, छली-कपटी। सो करनी ......भई—इन नेत्रों को रूप का उसी प्रकार लालची कहा गया है, जिस प्रकार मीन को जल का। परंतु मीन के-से लालच का कोई संकेत हमें इनमें नहीं मिला। मछली तो जल से अलग होते ही अपने प्राण दे देती हैं; परंतु परम रूपवान कृष्ण के चले जाने पर भी ज्यों-के-त्यों बने हैं। समय गए...नई= समय बीत जाने पर पछताना ही पड़ता है। दगा दई=अब पलकों ने इनका साथ देना छोड़ दिया है; इससे ये हमेशा खुले रहते हैं।

पद १६—बारक=एक बार। साधो=साधना, इच्छा। ऐसा न हो कि दर्शन की आशा लिये ही प्राण निकल जायँ। पहुनेहु=यदि तुम्हें अब हमारी परवाह नहीं रह गयी है, तो हमारे पास मत आओ; परंतु जिन नंदजी से तुम्हारा पिता-पुत्र का संबंध है, उन्हीं के यहाँ बहुत दिन के लिए नहीं, केवल दो-एक दिन के पाहुन की तरह ही आ जाओ। तुम्हारे आने पर यदि हम

तुम्हें आधे क्षण को भी देख लेंगी, तो हमारी सारी अभिलाषा पूरी हो जायगी। भिल ही में=सब बानक (बातें) बन जाने पर भी। यह भी अर्थ हो सकता है कि मिलने की तो कोई आशा है ही नहीं, दर्शन में भी बाधा पड़ गयी। लाधो=प्राप्त था, पाया था। बिलपति है=विलाप करती है।

पद १७—भए कारे=आँखों का अंजन आसूँ के साथ बह-कर उन्हें काला कर देता है। अंबु=जल। उबारे=कृष्ण एक बार जल से व्रज की रक्षा कर ही चुके हैं। इसीसे उनसे उबारने की प्रार्थना है।

पद १८—मूल पताल गई=विरह-बेल की जड़ पाताल तक पहुँच गयी है। विकसत=खिलना, बढ़ना। सुभाय आपने=जल से सींचे जाने और जड़ मजबूत हो जाने पर बेल स्वभावत: बढ़ती है। निरवारों=दूर करूँ, छुटकारा पाऊँ। पसरि छई=फैलकर चारों तरफ छा गयी है। छिन-छिन=साधरण बेल तो समय आने पर फलती-फूलती है; लेकिन यह विचित्र बेल प्रतिक्षण नयी हो जाती है। झई=वर्षा की झड़ी।

पद १६—बोल सहौं=किसकी-किसकी कड़ी बातें सहूँ। इन लोभी.........कहौं=अपने इन लोभी नयनों के कारण मुझे परवश होना पड़ा है। इन्हीं के कारण मुझे लाज का ध्यान नहीं रहा, शरीर की सुध-बुध भूल गयी हूँ और लोगों के बोल सहने पड़ रहे हैं। हाय, अब मैं क्या करूँ!

पद २०—रस-लंपट=रस के लालची। तृप्ति......ऐन=सुंदरता की निधि कृष्ण के कमल-मुख का रस-पान करने में इन्हें तृप्ति न हुई। बहुत अधिक सुंदरता का पान कर गये। निमिख=पल। शोभा...ऐन=हृदय एक संकुचित स्थान है। उसमें शोभा-सिंधु समा नहीं सकता। परंतु नेत्रों ने इस बात का ध्यान न

करके शोभा-सिंधु को ही अपने हृदय में भर लेना चाहा । बिरह-अजीरन=रूप का अधिक पान करने से बिरह-रूपी बदहज्मी हो गयी। बमि=बमन करके। बैद=वैद्य। इस बदहज्मी को दूर करने के लिए मधुपुरी से ब्रजनाथ वैद्य को बुलाने के लिए किसे भेजूँ?

इस पद से भारतेंदुजी का एक पद मिलाइए—

नैना वह छबि नाहिंन भूले ।
दयाभरी चहुँ दिसि की चितवन नैन कमलदल फूले ।
वह आवनि वह हँसनि छबीली वह मुसुकनि चित चोरैं ।
वह बतरानि मुरनि हरि की वह वह देखन चहुँ कोरैं ।
वह धीरी गति कमल फिरावनि कर लै गायन पाछे ।
वह बीरी मुख बेनु बजावनि पीत पिछौरी काछे ।
परबस भए फिरत हैं नैना इक छन टरत न टारे ।
हरिसखि मुख ऐसी छबि निरखत तन मन धन सब हारे ।

पद २१—न सकी सहि=सोती हुई गोपी स्वप्न देख रही थी। नींद खुल जाने से उसका स्वप्न जाता रहा । इसी से वह नींद को बैरिनि कहती है कि उससे स्वप्न का थोड़ी देर का सुख भी न देखा गया । निमेष लगाए=पलक लगाये ; सोने का प्रयत्न किया। सठगी=नींद की दुष्टता। ढोल बजाइ ठगी=खुले आम या सरे बाजार ठग लिया। कर मीड़त=दुखी होना। निसा जगी=रात भर जागती रही। सोई सगी=वही सच्ची सगी है, जो स्वप्न में देखी हुई कृष्ण की मूर्ति और उसके दर्शनों का सुख मुझे दिला सके।

पद २२—पोच=दुखदायी । निमिष=पल भर । पवन मिस=पवन के द्वारा। निठुर=निष्ठुर, कठोर। चपल=चंचल। ज्यों...जल आनि=रात के समय चकई जब जलाशय के तीर

पर रहती है, तब उसे जल में अपना प्रतिबिंब दिखाई देता है। इसे वह अपना पति समझ सुखी हो जाती है। निष्ठुर विधाता से उसका यह सुख देखा नहीं गया। उसने हवा चलाकर जल को चंचल कर दिया और उसका क्षणिक सुख भी छीन लिया। इसी प्रकार जब मैं अपने सुख-स्वप्न में मग्न थी, निष्ठुर विधाता ने मेरी नींद खोल दी और मेरा सुख भी छीन लिया।

पद २३—तन···भई=शरीर की दशा बहुत बुरी हो गयी है। छपाकर=चंद्रमा। गई...कलंकमई=राधा का शरीर चंद्रमा के समान छवियुक्त था। अब उसकी छवि जाती रही है, केवल (चंद्रमा की) कालिमा बच रही है। लोचन हु...लई= राधा के सुन्दर नेत्रों में शरद् ऋतु की शोभा के सार-समान सुंदरता थी। अब उनमें वह नहीं रही है, जैसे उनकी शोभा निचोड़ ली गयी हो। लाला भगवान दीन ने इस पंक्ति का यह पाठ दिया है—लोचन हुते सरद सारस से, सुछबि निचोय लई। यहाँ सारस का अर्थ कमल होगा। आशय यह कि उनके नेत्र शरद् के कमल-समान थे। अब उनकी सुछवि निचोड़-सी ली गयी है। च्यौनौ—पं० रामचंद्र शुक्ल ने इसका अर्थ 'रसायनी की घरिया' किया है। पं० नंददुलारे वाजपेयी ने लिखा है—खोटा, बुरा; 'चवन' शब्द महाराष्ट्र प्रदेश में इसी अर्थ में अब भी प्रयोग में लाया जाता है। दूसरा अर्थ ही अधिक स्पष्ट है। आँच...हई=मारी गयी, भस्म हो गयी, नष्ट हो गयी। आँच···हई=राधा के शरीर की कांति वैसे ही नष्ट हो गयी है जैसे, आँच लगने से खोटे सोने की चमक भारी हो जाती है। कदलीदल=केले का पत्ता। इसका एक तरफ का भाग बहुत चिकना और मनोहर होता है, दूसरी ओर कुछ खुरदरा और मोटी-मोटी नसों का। कदली···उलटि गई=राधा का शरीर पहले चिकने और मनोहर केले के पत्ते के समान था; अब वह

इतनी दुबली हो गयी है कि उसकी हड्डियाँ निकल आयी हैं और वह उलटे हुए केले के पत्ते की तरह ठठरी मात्र रह गयी है। दई-दई=दैव ने दी। संपति=सुख, ऐश्वर्य।

पद २४—ऊरध=ऊँची, लंबी। जलजोग=वर्षा के लक्षण। दुरे=छिपे। बरषि··· दुरे=पानी बरसने पर दुख रूपी मेढ़क, जो अब तक छिपे हुए थे, प्रकट हो गये हैं। दुसह=जो कठिनता से सहा जाय। दिनकर=सूर्य। विषम···करे=ग्रीष्म के प्रचंड सूर्य की तरह वियोग बहुत तपा रहा है। हरि-विधु=कृष्ण-रूपी चंद्रमा।

पद २५—कंज··· कहीं=नेत्रों की उपमा हमारे कवियों ने कमल, खंजन, मृग और मीन से दी है। परंतु, कृष्ण के वियोग होने पर हमें ज्ञात हो गया है कि ये उपमाएँ झूठी हैं; व्यर्थ हैं। कंज·· जहीं=रात होने पर कमल मुँद जाता है। यदि ये नेत्र कमल के समान होते, तो ये भी रात होते ही मुँद जाते; पर ऐसा होता नहीं है। अतः नेत्रों की कमल से उपमा झूठी है। खंजन-हूँ···तितहीं=खंजन पक्षी प्रियतम के पास क्षण में ही उड़ जाता है। हमारे नेत्र ऐसा भी नहीं करते। मृग···ढिगहीं=चंद्रमा के काले धब्बे को मृग माना गया है। यह हमेशा चंद्रमा के पास रहता है। हमारी आँखे यदि मृग के समान होतीं, तो ये कृष्ण के चंद्र-मुख के पास ही रहतीं। रूप···नहीं=मछली तो जल से बिछुड़ते ही अपने प्राण दे देती है; परंतु हमारे नेत्र रूप-सरोवर कृष्ण के बिछुड़ने पर भी जीवित हैं। ये झरना...बहीं=हमारे नेत्र झरने की तरह रात-दिन बहा करते हैं। जान पड़ता है कि नेत्रों की सब उपमाएँ झरने के प्रवाह में बह गयी हैं। इसीलिए उपमा के योग्य अब ये नहीं हैं। घट साँस रही=जीवन की आशा थोड़ी ही है।

पद २६—छीजै=छीजना, क्षीण होना, दुर्बल होना। किन··· लीजै=डूबते हुए व्रज को (पहले की तरह) अब आप क्यों नहीं उबार लेते। बारकहूँ=केवल एक बार ही। चरन...... लीज—हम विरह के दुख-सागर में डूब रही हैं। कृपा करके हमें अपने चरण-कमलों का दर्शन करा दीजिए। यह दर्शन हमें नौका की तरह दुख-सागर में डूबने से बचा लेगा और इस पुण्यकार्य से आपको बड़ा यश मिलेगा।

पद २७—मनुष्य के दुख-सुख का प्रकृति की रमणीयता में कोई परिवर्तन नहीं होता। कृष्ण के जाने के बाद मधुवन की कुंजें हरी-भरी और फूली-फली हैं। गोपियों के लिए अपनी मानसिक स्थिति और प्रिय-वियोग के कारण अब इन रम्य स्थानों में किसी प्रकार का आकर्षण नहीं रह गया है। वे तो इन्हें फूलता-फलता देखकर आश्चर्य और दुख से ऐसे प्रश्न कर बैठती हैं, जैसे इस पद में हैं। कत रहत हरे=प्रिय कृष्ण का वियोग हो जाने पर भी तुम हरे क्यों बने हुए हो? क्यों न जरे=कृष्ण की वियोगाग्नि में जल क्यों नहीं गये? द्रुमतर= वृक्ष के नीचे। थावर (स्थावर)=अचल। जड़=जिनमें चेतना न हो। जंगम=चलने-फिरनेवाला। पुहुप=पुष्प, फूल। मोहन वेणु......पुहुप धरे=कृष्ण किसी दिन तुम्हारे वृक्षों के नीचे उनकी शाखा पकड़कर वंशी बजाया करते थे, जिसका स्वर स्थावर, जड़, और चैतन्य सभी को मोह लेता था और जिसे सुनकर मुनि भी ध्यान करना भूल जाते थे। आज तू उनकी इस छवि को न धारण करके फूल क्यों धारण कर रहा है। पसरे=फैल गयी है। विरह-दवानल=विरह की आग। 'दावा-नल' जंगल की आग को कहते हैं। गोपियों का संकेत यह है कि जो विरह रूपी दावानल हमारे नख से शिख तक फैल रहा

है, उससे तुम क्यों नहीं जलते जो प्रसन्नता-सूचक हरे हो रहे हो और फूल धारण किये हो।

पद २८—आरि=हठ। पाहुने के मिस=अतिथि रूप में। आशय यह कि यदि तुम्हें यहाँ आने की इच्छा नहीं है, तो हमारे सुख के लिए पाहुने होकर ही आ जाओ। बायसहिं उड़ावत=कौओं को उड़ाते-उड़ाते। विश्वास है कि उड़ाने पर कौआ यदि बोलता हुआ उड़ जाय, तो प्रियजन आता है या उसका कुशल-समाचार मिलता है। उनहार=समान। आशय श्याम-रूप कृष्ण से है। राधा.......करार=इस पंक्ति से राधा के वियोग-दुख का पता लगता है, जिसने उसे पागल बना दिया है। दुइ खंजन......बारि=दोनों नेत्ररूपी खंजन आँसुओं के जल में डूबे रहते हैं। सकैं......पसारि=पंख फैलाकर उड़ नहीं सकते। जिससे उनके प्राण डूबने से बच जायँ।

पद २९—अलिसुत=भौंरा। जलसुत=कमल। संपुट=कोष, सूर्यास्त होने पर कमल संकुचित होकर मुँद जाता है और भौंरा उसी में बंदी हो जाता है। सारंग= हिरन। नांद=स्वर, संगीत। सनमुख बान सह्यो=संगीत पर जब हिरन मुग्ध होकर अपनी सुध-बुध खो देता है, तब शिकारी उसका शिकार कर लेता है। इस पद की पहली पंक्ति की तरह ही मीरा ने भी कहा है—

> जो मैं ऐसो जानती, प्रीति करे दुख होय।
> नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीति करो जिन कोय॥

पद ३०—मरिबौहू न बिचारै=मरने की भी परवाह नहीं करता। पारधी=शिकारी। परेवा=पिड़की, कबूतर।

पद ३१—उवति जुन्हैया=चाँदनी छिटकती है। डिस···

जाति=डसने के बाद काली नागिन उलटी हो जाती है और उसका सफेद भाग ऊपर आ जाता है। उसी प्रकार काली रात्रि में यह जो चाँदनी छिटकी हुई है, सो ऐसा जान पड़ता है कि रात्रि डसकर उलटी हो गयी है। आशय है कि चाँदनी रात गोपियों के लिए अधिक दुखदायी है। जंत्र···लागत=इस काली नागिन-रूपी रात्रि के डसने पर जंत्र-मंत्र कुछ काम नहीं आते। सिरानी=समाप्त होना। लहरैं खाति=साँप के काटने से जिस तरह लहरें आती हैं, उसी प्रकार गोपियाँ विकल हो रही हैं।

पद ३२—घन घोर=घनघोर घटा, जिसे देखकर भय लगता है। मानौ......तोरे=ऐसा जान पड़ता है कि ये काले-काले बादल कामदेव के हाथी हैं, जो मतवाले हो बँधन तोड़कर भाग आये हैं। गंडमद=मस्त हाथियों के मस्तक से मद चूता है। स्याम......थोरे=पानी थोड़ा-थोड़ा इस तरह बरस रहा है, मानो हाथियों का मद चू रहा हो। मुरत न=वश में नहीं आते। बेला=समय। कुच-उरोज। ऐरापति=इंद्र का हाथी। ब्रजपति=कृष्ण। केहरि=सिंह। गात...ओरे=ओले की तरह शरीर गल रहा है।

पद ३३—सिखिनि=मोरों ने। सिखर=ऊँची चोटी। बानैत=वीर, योद्धा। ताजी (अरबी शब्द है ताजी)=घोड़ा। चुटकि=चटकदार। नव ·· दिखायौ=नये-नये बादल योद्धाओं की तरह सजे, पवन रूपी घोड़े पर चढ़े चटक-मटक से दिखाई दे रहे हैं। चमकत··· बजायौ=आकाश में चमकती हुई बिजली ऐसी जान पड़ती है, मानो योद्धाओं के हाथ की तलवार चमक रही हो, बादलों की गरज इस समय युद्ध में बजनेवाले बाजों की तरह है। मारू=युद्ध के समय गाया जानेवाला राग। सुभट=अच्छा योद्धा। पंच=पाँच, मदन के पास पाँच बाणों का होना माना गया है। त्रास=

भय। पहिले···बिरमायौ=मदन और पावस-दल द्वारा इस प्रकार सतायी जाने पर भी हमारे शरीर में जो प्राण बच रहे हैं, वह केवल आपके पूर्व गुणों का स्मरण करके ही। आपने पहले हमारी रक्षा की थी ; इस बार भी वैसी ही आशा है।

पद ३४—पपीहा=पपीहा निस्वार्थी और सच्चा प्रेमी पक्षी है। इसीसे गोपियाँ उससे सहानुभूति दिखाती हुई उसे आशीर्वाद दे रही हैं। नावँ=नाम, पपीहा पी-पी बोलता है, जिससे प्रिय का अर्थ निकलता है। भयो······कारौ=विरह के ज्वर से काला हो गया है। बिछुरन···न्यारौ—वियोग का दुख (साधारण दुख से) न्यारा होता है। जाहि······अनियारौ=प्रेम-बाण की नोक जिसको चुभती है, वही उसकी पीर समझता है। स्वाति······खारौ=स्वाती नक्षत्र की एक बूँद के लिए (अपार और अगाध) समुद्र को भी उसने खारा समझकर छोड़ दिया है।

पद ३५—इस पद से जान पड़ता है कि राधा अब बहुत ही दुखी और निराश हो गयी है। बाँटि······पीजै=पीसकर विष पी लिया जाय। कै······दीजै=अपने हाथ से शीश काटकर शिवजी पर चढ़ा दिया जाय। खीझै=दुखी होना, झुँझलाना।

कृष्ण दशा

अपना प्यारा व्रज छोड़कर, अपने साथ खेली हुई सुन्दर गोपियों को छोड़कर और जिन माता-पिता की स्नेहमयी गोद में वे खेले थे, जिन्हें तरह-तरह की बाल-क्रीड़ाओं से मुग्ध किया था, स्वर्गोपम सुख दिया था, उन्हीं को छोड़कर कृष्ण को मथुरा जाना पड़ा। उनके पास प्रेमी हृदय था। माता-पिता से उन्हें स्वाभाविक प्रेम था, सखा ग्वाल-बालों से उन्हें स्वाभाविक प्रेम था साथ खेली हुई व्रजबालाओं से उन्हें मधुर और स्वाभाविक प्रेम था, जिन गैयों को वे दिन-रात चराया करते थे, जिनका दूध वे

जंगल में थन में मुँह लगाकर पिया करते थे, जिनकी पीठ सहलाने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था, उन मूक पशुओं से भी उन्हें बड़ा प्रेम था और जिस व्रजभूमि पर लोट-लोटकर वे बड़े हुए थे, उनसे भी उन्हें सहज प्रेम था। ऐसा प्रेमी-हृदय मथुरा-जैसे सुंदर और रमणीक नगर में जाकर राज्य और समाज के कुचक्रों में तो अवश्य फँस गया होगा; परन्तु व्रज की प्रत्येक स्मृति उसका हृदय सालती रही होगी। कई दिन तो राजधानी में उसका मन ही न लगा होगा।

'सूरसागर' में कृष्ण की वियोग-दशा वर्णन करनेवाले पद अधिक नहीं हैं। गोपियों को प्रेमभरा संदेशा भी उन्होंने अधिक पदों में नहीं भेजा है। यहाँ दो पद ऐसे दिए गये हैं, जिनमें कृष्ण का माता के लिए संदेशा है।

पद ३६—जनि=नहीं, मत। बिलगु मान्यौ=बुरा मानना। कहि पठयौ धाय=दे० पद संख्या एक। धूमरि=काली। धौरी=धवल, सफेद। बिभव=वैभव, ऐश्वर्य, धन-संपत्ति। हृदय जुड़ाय=हृदय को शांति मिलना।

पद ३७—कोउ न कह्यौ कन्हैया=किसी ने प्यार से मेरा नाम नहीं पुकारा। कृष्ण की यह उक्ति बड़ी भोली है। पीनी=पी। धैया=थन से निकलती हुई दूध की धार, जो कृष्ण खेल करते हुए पीते थे। अबेर-सबेरौ=मौका पाकर। चुराय राधिका=राधा कहीं मौका पाकर मेरे खिलौने न चुरा ले जाय। सोधौ=खबर, शोध।

कृष्ण और उद्धव

मथुरा में रहते हुए कृष्ण दिन भर सोचते रहते थे—माता-पिता की, प्यारे ग्वाल-बालों की, सरल हृदय प्रेममयी व्रजबालाओं की क्या दशा होगी। मेरे वियोग में उन्हें कितना दुख होगा।

न जाने उनके दिन कैसे बीत रहे होंगे। रोज वे आना चाहते थे; परन्तु आ न सके। दिन-दिन समस्याएँ और परिस्थिति जटिल ही होती जाती थी। धीरे-धीरे उन्हें जान पड़ने लगा कि कम-से-कम अभी तो उनका व्रज लौटना असंभव ही है।

इसी बीच में कुब्जा नाम की एक दासी ने उनकी बड़ी सेवा की। उससे वे प्रसन्न भी हो गये। दासी से प्रसन्न होने का समाचार कृष्ण के प्रेम का संवाद बनकर व्रज में पहुँचा। कृष्ण को इसका कुछ पता न था।

अंत में उन्होंने व्रजवासियों को सांत्वना और संतोष देने के लिए उद्धव के द्वारा संदेश भेजने का निश्चय किया। प्रसंग यह भी है कि उद्धव को अपने ज्ञान का बड़ा गर्व था। कृष्ण को गोपियों के, अपने मित्रों के और माता-पिता के वियोग में दुखी देखकर वे कभी-कभी हँस भी दिया करते थे। गोपियों की बात सुनकर भी उन्हें हँसी आयी और उन्होंने बड़े गर्व से कहा—मैं उन्हें निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देकर मोह-ममता से मुक्त कर सकता हूँ। ऐसे शुष्क हृदय व्यक्ति के द्वारा माता-पिता और गोपियों के पास उन्होंने अपना संदेशा कदाचित इसी उद्देश्य से भेजा कि वह प्रेम और ममता की महिमा समझ जाय; उसे पता हो जाय कि सांसारिक ममता और मोह, निस्वार्थ भक्ति और प्रेम का बंधन कितना शक्तिशाली होता है।

पद ३८—उपंगसुत=उद्धव। सहित=प्रेम भरे। नेम=नियम, योग के विधि-विधान।

'प्रिय-प्रवास' में कृष्ण का उद्धव के प्रति यह कथन बड़ा मार्मिक है—

शोभा अद्भुतशालिनी व्रजधरा प्यारी पगी गोपिका।
माता प्रीतिमयी सनेह-प्रतिमा वात्सल्य-धाता पिता।

प्यारे गोपकुमार प्रेममणि के पाथोधि से गोप वे।
भूले हैं न, सदैव याद उनकी देती व्यथा है महा।
जी में बार अनेक बात यह थी मेरे उठी मैं चलूँ।
प्यारी भावमयी सुभूमि व्रज में दो ही दिनों के लिए।
बीते मास कई परंतु अब लौं इच्छा न पूरी हुई।
नाना कार्यकलाप की जटिलता होती गई बाधिका।

पद ३९—वृषभानु=राधा के पिता। सुधि लीजो=कुशल-समाचार पूछना। हूँतो=ओर से, तरफ से। सचु=सुख। वयक्रम=अवस्था। नियार=न्यारा, अलग।

पद ४०—बीरैं=भाई। कोसक=कोसों दूर तक। समाधान=धीरज देना, प्रबोधना।

पद ४१—वृषभानुतनया=वृषभानु की पुत्री राधा। हित=प्रेम। सदा हित······नात=पद की ऊपर की चार पंक्तियाँ कृष्ण की कही हुई हैं। उन्हें सुनकर इन दो पंक्तियों में ऊद्धव उत्तर देते हैं—जिस प्रेम की आप बात चला रहे हैं, वह भ्रम से उत्पन्न हुआ है, नाशवान नारियों के प्रति है। वह सदा एक-सा नहीं बना रहेगा। इसलिए मेरी बात को मानिए और मेरी तरह एक ही से (अर्थात् निर्गुण ब्रह्म से ही) प्रेम कीजिए।

पद ४२—आन=अन्य, दूसरी बातों में। सुनि=सुनो।

पद ४३—पलानो=प्रस्थान करो, जाओ। भासति=डूबती हैं। आसति=आसक्ति, सामीप्य, मुक्ति।

पद ४४—वल्लभिन=प्यारी गोपियों का। तूल=रूई। काम पावक=काम-रूपी अग्नि में। अजौ लौं=आज भी। कछुक सजग शरीर=शरीर में कुछ प्राण बाकी होंगे। समाधाने=प्रबोधे, सांत्वना दिये। प्रबीन (प्रवीण)=चतुर।

पद ४५—अभिलाष बढ़ायौ=बड़ी प्रसन्नता हुई। मिथ्या

सुखभोग=सांसारिक सुख और भोग-विलास झूठा है। आयसु= आज्ञा। परमान=प्रमाण, सत्य। मैं······आन=मैं कुछ दूसरी बात क्यों कहूँ, इनका विरोध क्यों करूँ।

उद्धव का व्रज पहुँचना

ब्रह्मज्ञान,अद्वैतवाद और योग की शिक्षा देने मन में तरह-तरह के तर्क-कुतर्क करते उद्धव व्रज में पहुँचे। दूर से उनका रथ आता देखकर व्रजवासियों ने समझा—कृष्ण आ गये। बड़ी प्रसन्नता से सब हाथ का काम-काज छोड़कर उसी ओर दौड़े; पर कृष्ण को न पाकर वे बड़े खिन्न हुए। कवि जैसे इस खिन्नता से यह आभास दे देता है कि इनसे मिलकर व्रजवासियों को आगे भी खिन्नता ही होगी। उद्धव को कृष्ण का मित्र जानकर सबने बड़ी आवभगत की। सबको आशा थी कि ये प्रिय कृष्ण का संदेश लाये होंगे। इससे उनका और भी सम्मान हुआ।

पद ४६—दाम=माला। गद्‌गद······अभिराम=कृष्ण के सुंदर शारीरिक अंगों का स्मरण करके गद्‌गद हो गयीं।

पद ४७—अनुहारि=उसी रूप का। रुचिकारि=सुन्दर लगनेवाला। तन=ओर, तरफ।

पद ४८—अनजानत=बिना जाने हुए। वासुदेव=भगवान। जनि भूलै=मत भूलना।

पद ४९—सुफलकसुत=अक्रूर। कंस के कहने से अक्रूर ही कृष्ण को मथुरा लिवा ले गये थे। पर्‌यो संदेह=संदेह| यह कि अब ये काहे के लिए आये हैं। भोरे=भोले-भाले। झख=मछली। पान्यौ= पानी। आशय यह कि वे उद्धव को पाकर बहुत प्रसन्न हुईं।

पद ५०—बरण=वर्ण, रूप-रंग। बसन=वस्त्र, कपड़े। कापर बहिराए हौ=अब किसे लेने के लिए भेजे गये हो। वहाँ

लै छाए हौ=(कृष्ण के साथ हमारा मन) मथुरा में ले गये हो। सयानप—बुद्धिमानी। भले···हौ=भली भाँति समझ लिये गये हो ; तुम्हें हम अच्छी तरह जान गयी हैं।

पद ५१—पाती=पत्री, चिट्ठी। लाड़=प्रेम, दुलार। बाल-सँघाती=बचपन के साथी।

पद ५२—ज्यों दर्पन···बिसराई=जिस प्रकार दर्पण में जो कुछ नेत्र देखते हैं, वहाँ तक अपना हाथ नहीं पहुँचता ; अर्थात् स्पर्श-सुख न मिलने पर भी दर्पण में नेत्र-सुख अवश्य मिलता है। उसी प्रकार यद्यपि हमें श्याम के स्पर्श-सुख का अनुभव नहीं हुआ है, तथापि तुम्हारे द्वारा हमने कृष्ण का दर्शन पा लिया है, हमारी विरह-व्यथा दूर हो गयी है।

ऊधव-गोपी-संवाद

माता यशोदा से मिलकर, उन्हें सांत्वना देकर ऊधव गोपियों से मिलते हैं। व्रजबालाओं के मन में उस समय तरह-तरह के विचार उठ रहे थे। कोई कृष्ण की निष्ठुरता के विषय में सोच रही थी, कोई यह सोच रही थी कि मथुरा जाकर वे हमें भूल ही गये ; वहाँ की नागरिक स्त्रियों के सामने उन्हें हमारी क्या चिंता होगी। किसी का अनुमान था कि ऊधव को भेजकर कृष्ण ने क्षमा माँगी होगी और कोई विचारती थी कि कृष्ण ने अपने आने का समाचार इनके द्वारा भेजा होगा। अतः वे बड़े उल्लास से ऊधव से मिलती हैं।

कुशल-प्रश्न के पश्चात् गोपियाँ अपनी प्रीति का परिचय और कृष्ण की निष्ठुरता के लिए उलाहना देना चाहती हैं। वे अपनी दशा का वर्णन करती हैं और स्वयं ऊधव भी कृष्ण-वियोग में दुखी गोपियों की दशा देखते-समझते हैं। प्रिय-मित्र के रूप में ऊधव को पाकर उनके हृदय में कृष्ण की सोती हुई स्मृति जैसे

जाग जाती है ; हृदय के उद्गार उमड़ आते हैं ; आँसू बहने लगते हैं। अपने विषय में वे जो कुछ कहना चाहती हैं, कह नहीं पातीं। गोपियों की इस दयनीय दशा का दिग्दर्शन करना 'भ्रमरगीत' का प्रथम उद्देश्य है। इस विषय का प्रतिपादन भी सूरदास ने बड़ी कुशलता से किया है। 'भ्रमरगीत' के अनेक पदों में गोपियों की विरह-जन्य कातर दशा का करुण हृदयस्पर्शी चित्र खींचा गया है। सहृदय व्यक्ति उसे पढ़कर अपने आँसू नहीं रोक सकते। इसके पश्चात् ऊधव-गोपी-संवाद आरंभ होता है। काव्य की दृष्टि से 'सूरसागर' का यह अंश बहुत सुंदर है।

विरह में व्याकुल गोपियों को बहुत समय पश्चात् सुख का अवसर मिला है। कृष्ण के आने के विषय में तो वे बहुत कुछ निराश हो चुकी हैं ; परंतु एक बार उनका संदेश पाने की उनकी बड़ी इच्छा है। कृष्ण के पास उन्होंने इतने संदेश भेजे थे कि उनसे मधुवन के सब कुएँ भर गये होंगे। इन संदेशों की अधिकता से डरकर यात्रियों ने उस मार्ग से आना तक छोड़ दिया है। परंतु इनका कोई उत्तर कृष्ण की ओर से उन्हें अब तक नहीं मिला। आज ऐसा शुभ-दिन है कि संदेशों का उत्तर ही नहीं, साक्षात् कृष्ण के मित्र उनके पास आये हैं। इतने समय के पश्चात् आज उन्हें हँसने-बोलने का अवसर मिला है। ऊधव से वे हास-परिहास तक करती हैं। प्रिय-मित्र से परदा ही क्या ! फिर ऊधव तो रूप-रंग में, वसन-भूषण में भी कृष्ण के समान ही हैं।

शुष्क ब्रह्मज्ञानियों के पास इस हास-परिहास और विनोद का उत्तर नहीं है। उत्तर वे दें भी क्या ! रसिकता से वे भागते हैं, प्रेम से वे कोसों दूर हैं। ऐसी दशा में गोपियों के प्रेम-विषयक विनोद को ऊधव ने उनका प्रलाप ही समझा हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। हक्का-बक्का-से वे गोपियों का मुँह ताकने लगे।

हाँ, जब गोपियों ने अपनी विरह-दशा का वर्णन करना आरंभ किया ; कृष्ण-वियोग में किस तरह तड़प-तड़पकर उन्होंने जीवन का इतना समय काटा है, कृष्ण से वे कितना प्रेम करती हैं, कृष्ण के न आने से उनकी दशा कितनी दयनीय हो गयी है, उनके दर्शनों की उन्हें कितनी लालसा है आदि अनेकानेक बातें उन्होंने बतलायीं, तब ऊधव को उन्हें समझाने और अपनी बात कहने का अवसर मिल गया। उन्होंने गोपियों को ज्ञान और योग का उपदेश दिया। ऊधव की शुष्क ज्ञान और श्रमसाध्य योग की बातें गोपियों की समझ में नहीं आयीं। उन्हें रसिक-प्रवर कृष्ण के प्रिय सखा के मुख से यह सुनने की स्वप्न में भी आशा नहीं थी। अतः आरंभ में तो वे यही न समझ पातीं कि वे जाग रही हैं या स्वप्न देख रही हैं। परंतु बार-बार ऊधव ने जब वही बातें दोहरायीं, तब उन्हें मालूम हो जाता है कि ऊधव का निर्माण किस तत्व से हुआ है। प्रिय-सखा की हृदय-हीनता का परिचय पाकर गोपियों को बड़ी खिन्नता होती है। वे ऊधव के ज्ञान और योग का खंडन करती हैं और समझाती हैं कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म से हमारा काम नहीं चल सकता ; हमें उसकी चाह नहीं है। हम अपने प्रिय उस कृष्ण को चाहती हैं, जिसके साथ हम खेल चुकी हैं, जिससे हमारा 'लरिकाई' का प्रेम है और जो प्रेमपूर्ण व्यवहारों का उत्तर देने में कुशल है। अपनी बातों पर ऊधव को ध्यान न देते और अपनी ही अलापते देख गोपियों को स्पष्ट ज्ञात होता है कि वे निर्गुण ब्रह्म का प्रचार करने ही ब्रज में आये हैं। अब वे ऊधव की हँसी उड़ाने लगती हैं।

इसी समय एक भ्रमर उधर से उड़ता हुआ निकलता है। किंवदंती है कि यह भ्रमर मथुरा की ओर से उड़कर आया और राधा के चरण-कमलों पर मँड़राने लगा। सब गोपियों

का ध्यान स्वभावत: उसकी ओर आकर्षित हो गया। इधर ऊधव अपनी तरंग में ज्ञानोपदेश दिये जा रहे हैं, उधर भ्रमर भ्रम में पड़ा गुनगुनाता चला जा रहा है। रूप-रंग तो दोनों का समान है ही, हठधर्मीपन भी मिल जाता है। इसलिए गोपियाँ भ्रमर को संबोधित करके उत्तर देना प्रारंभ करती हैं। गोपियाँ बातें सुना तो रही हैं ऊधव को, पर कह रही हैं भ्रमर से। गोपियों की इन्हीं उक्तियों को 'भ्रमरगीत' नाम दिया गया है। इस प्रसंग में गोपियों ने ऊधव को खूब खोटी-खरी, उल्टी-सीधी सुनायी हैं। संबोधन वे कभी तो सीधे ऊधव को करती हैं और कभी भ्रमर को। यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिए कि दोनों प्रकार के संबोधन सार्थक हैं। जहाँ गोपियों ने सीधी-सादी साधारण व्यंग्य की बात कही है, वहाँ प्राय: ऊधव को संबोधित किया है; परंतु जहाँ व्यंग्य कुछ कटु हो गया है, प्रसंगवश अथवा आवेश में कोई कटूक्ति उनके मुख से निकल गयी है, वहाँ प्रियवर कृष्ण-सखा की सम्मान-रक्षा के लिए भ्रमर को संबोधित किया गया है।

गोपियों की उक्ति का सार यह है कि अपने निर्गुण ब्रह्म के विषय में जो तुम तरह-तरह की बातें बनाकर कह रहे हो, उन्हें सुनना कौन चाहता है, समझना कौन चाहता है, उनपर विश्वास कौन करेगा? अविश्वास का मूल कारण यह है कि तुम अपनी बातों से ईश्वर के उस सगुण-रूप को लोक से छिपाना चाहते हो, जो मनुष्यमात्र आदि काल से अपने चारों ओर प्रत्यक्ष देख रहा है। अत: तुम्हारा यह प्रयत्न वैसा ही हास्यास्पद है, जैसा तिनके की ओट में सुमेरु को छिपाने का प्रयत्न। अपने इस उद्योग में तुम कभी सफल नहीं हो सकते। कहीं तिनके की ओट में पहाड़ छिप सकता है?

पद ५३—करि समाधि=समाधि लगाकर। अंतरगति=हृदय के अंतर। अविगत=जिनका किसी को पता न हो। निगम=वेद।

पद ५४—रसरीति=प्रेम-व्यवहार। निर्गुन फीको=सगुण की समता में गोपियों को निर्गुण फीका लगता है। स्रवननि=कानों से। ज्योति...ध्यावत=ब्रह्म को ज्योति समझकर उसका ध्यान करते हैं। ग्रीव पर मेलै=गले में हाथ डाले (घूमते थे)। लोककानि······खेली=लोक और कुल की लाज कृष्ण से मिलने के सामने कुछ न समझा। जोग-जहर=गोपियों को योग की बातें जहर-सी लगती हैं।

पद ५५—घोष=अहीरों की बस्ती। सुखरासी=सुख के रस में पगी हुई। अष्ट-महासिधि=आठों महासिद्धियाँ दासी की तरह हैं।

पद ५६—तातें=इसलिए। जीजतु···चाहि=मुख देखकर जीते हैं। बासरगत=दिन बीतने पर। रजनीमुख=संध्याकाल। करत···पंग=उन्हें देखकर नेत्रों की गति स्तब्ध हो जाती थी; आँखें एकटक उन्हें निहारने लगती थीं।

पद ५७—खेप=माल, बोझ। फाटक=फटकन, अनाज का कूड़ा। हाटक=सोना। भोरै निपट सुधारी=हमको बिलकुल भोली और मूर्ख समझ लिया है। धुर ही तें=आरंभ से ही। डहकावै=सौदे में धोखा खाये, ठगाये। सबार=सबेरे। गहरु जानि लावौ=देर मत लगाओ।

पद ५८—ठगौरी=ठगनेवाली चीज, जादू। ब्यौपार=सौदा, माल। ऐसौं ही=ज्यों का त्यों बिना बिके ही। जापै=जिनके पास। ताकैं···समैहै=वे इसे अपने हृदय में न रख सकेंगी; वे इसे नहीं चाहती हैं। दाख=मुनक्का, मेवा। कटुक निबौरी=नीम का कड़ुआ फल। केना=बदले का सौदा; वह अन्न जो सौदे के

मूल्य में दिया जाता है। मुक्ताहल=मोती। गुनहिं=सगुण को। को······निरबैहै=निर्गुण का निर्वाह कौन करेगा; निर्गुण को कौन चाहेगा?

पद ५९—नाहिं रहत=किसी तरह नहीं रहतीं। निपटहिं=बिलकुल, एकदम। सीखौ नाहिं गहत=शिक्षा नहीं ग्रहण करता, सीख नहीं मानता। प्रकृति=स्वभाव, आदत। प्रगट दरसन=प्रत्यक्ष रूप से, सामने देखना। स्रवनहु नाहिं सहत=कानों को भी अच्छा नहीं लगता। बिनु···लहन=बिना उनका प्रत्यक्ष दर्शन किए (आँख, कान) किसी को सुख नहीं मिलता।

पद ६०—नातरु=नहीं तो। जय गायौ=कीर्ति-गान किया। बरनहीन=वर्ण-हीन। लघु जाती=छोटी जाति की। पाँती=पंक्ति में, साथ-साथ। पालागौं=पैर पड़ती हैं। छार=भस्म, राख।

पद ६१—पूरनता···पूरी=इन नेत्रों की इच्छा न पूरी हुई। बिसूरी=बिलखकर, दुखी होकर। समूरी=प्रसंग-सहित, जड़-मूल से। धूरी=धूल। मधुलंपट=मधु के लालची। कितव=धूर्त, छली। कूरी=क्रूरता से, निठुरता से। कुलिस करि चूरी=वज्र कैसे चूर किया जा सकता है। रूरी=अच्छी, सुंदर। झूरी=नीरस। देख प्रगट···झूरी=शीतल, स्वच्छ और सुस्वाद जल से भरी नदियाँ, समुद्र, तालाब सभी कुछ संसार में हैं; परन्तु चातक को ये सब नीरस जान पड़ते हैं; क्योंकि वह स्वाती के जल से सच्चा प्रेम करता है; वही उसके जी में बस रहा है।

पद ६२—काटिबो घास=आशय 'भैंस के आगे बीन बाजै, भैंस खड़ी पगुराय' से है। फिरि ऐहैं=फिर से आयेंगे, दुख के बाद सुख आता ही है। तेरहों मास भयौ—बहुत दिन हो गये।

पद ६३—परतीति=विश्वास। नाहिन···मानैं=हम यह नहीं कहते कि ज्ञान की बातों में कुछ सार है ही नहीं। उर में

आनैं=हृदय में धारणा करें। भृंग कीट=विलनी नाम का कीड़ा। कहते हैं, यह दूसरे कीड़ों को पकड़कर अपने रूप का कर देता है। इसी तरह हमें कृष्ण ने अपने रूप का कर लिया है; हम उन्हीं के रंग में रँग रही हैं।

पद ६४—लरिकाई···छूटत=बाल्यावस्था से कृष्ण से हमारा जो प्रेम है, उसे हम कैसे छोड़ सकती हैं? यह उक्ति बड़ी स्वाभाविक है। बाल्यावस्था की आदतें तो जीवन भर साथ रहती ही हैं। अन्तर्गति=चित्त की वृत्ति, मन। निमिष=एक पल को।

पद ६५—अटपटि=बेमतलब की। बूची=कनकटी, जिसका कान कटा हो। खुभी=कान में पहनने का एक गहना। बेसरि=नाक में पहनने का एक गहना। मुँडली=जिसके बाल न हों। पाटी पारन=माँग निकालना। मता करै=सलाह ले। ऐसो··· सिखावै=जिस प्रकार बूची का खुभी पहनना, अन्धी का आँख में काजल लगाना, नकटी का बेसरि पहनना, मुँडली का पाटी पारना, कोढ़ी का शरीर में केसर मलना, बहरी से पति का सलाह करना मूर्खता की बातें हैं, उसी प्रकार हमें जोग सिखाने का प्रयत्न करना भी मूर्खता ही है। नरियर···कीन्हें=ब्राह्मण का भेंट में दिया हुआ नारियल हाथ जोड़कर (वन्दना करके) लौटा दिया जाता है=ब्राह्मण की भेंट लेने की प्रथा नहीं है। इसी तरह तुम जो भेंट लाये थे, हम तुम्हीं को वन्दना करके लौटाये देती हैं।

पद ६६—बिलग जनि मानहु=बुरा मत मानना। भँवारे=भ्रमण करनेवाले; व्यंग्यार्थ आवारा। कमलनैन=श्रीकृष्ण। मनियारे=सुन्दर कान्तिवाले। माट=मटका, घड़ा। पखारे=धोये। ता गुन=इसी कारण।

पद ६७—कहि निबरौ किन सोऊ=उसे भी कहकर छुट्टी

क्यों नहीं पा लेते : आशय यह कि एक बार यही क्यों नहीं कह देते कि मर जाओ। सयाने=बुद्धिमान ; व्यंग्य कर रही हैं। होनी···होऊ=जो कुछ भाग्य में बदा है, सब सहेंगी। छुटि गयो···होऊ=हमारे हृदय में जो मान था, वह मिट गया। सूरदास···खोऊ=यह विश्वास करके कि गोकुलनायक कृष्ण ही हमारे स्वामी हैं, चित्त की चिंता दूर हो गयी।

पद ६८—राँची=अनुरक्त। रूप-रस-राँची=रूप-रस पर जो आँखें अनुरक्त हो चुकी हैं। ये बतियाँ=ज्ञान और योग की बातें। अवधि···दूखी=ऊधव, तुम्हारे आने के पहले इन्होंने कृष्ण के लौट आने की बड़ी प्रतीक्षा की; एक टक उनकी बाट जोही। उस समय निराश होने पर इन्हें बहुत खीझ हुई; परन्तु वह खीझभरी व्यथा भी तुम्हारी जोग की बातों के दुख से कम ही थी। बारक=एक बार। पतूखी=पत्तों का दोना। जंगल में खेल-खेल में पत्तों का दोना बनाकर, गाय का दूध दुहकर कृष्ण पिया करते थे। जोग···सूखी=हमारा हृदय सूखी सरिता के समान है। सूखी सरिता में जैसे नाव नहीं चल सकती, वैसे ही हमें जोग सिखाने का तुम्हारा प्रयत्न भी व्यर्थ ही है। इससे हमें बड़ा दुख मिल रहा है। इसलिए कृपा करके योग की बातें न करो।

पद ६९—कहा...बड़ाई=ज्यादा बड़ाई करना भी किस काम का। स्रुति बचन अगोचर=वेद भी जिसका निर्वचन नहीं कर पाते। मनसा=मन। बपु=शरीर। रूप...माई=जिस निर्गुण ब्रह्म के रूप, वर्ण, शरीर, सखा आदि ही नहीं हैं, उससे निरंतर प्रीति का निर्वाह किस प्रकार किया जा सकता है? चित्तवृत्ति को स्थिर करने के लिए कोई आधार तो होना ही चाहिए न! जल··· चतुराई=तरंग जल ही में उठ सकती है, भीति (आधार) पर ही

चित्र खींचा जा सकता है और चित्त होने पर ही चतुराई की जा सकती है। परन्तु तुम जल, भीति और चित्त के न होने पर भी तरंग, चित्त और चतुराई की बात उठा रहे हो, तुम्हारी यह रीति बिलकुल नयी और विचित्र है। मन···अरुझाई=हमारे मन में कृष्ण की मधुर और मनोहर मूर्ति चुभ रही है, हमारे रोम-रोम में वह उरझ रही है।

पद ७०—नागरि=नगर की,चतुर। सतिभाव=सत्य विचार, हमारे प्रति समवेदना का भाव है तो। आरत (आर्त्त)=दुखी।

पद ७१—हमारे...लकरी=हारिल (सं० हारीत) पक्षी अपने पंजे में जिस प्रकार सदा एक लकड़ी पकड़े रहता है, उसी तरह हमने कृष्ण को पकड़ रखा है। सौंतुख=प्रत्यक्ष अवस्था में। जक=रट, धुन। जोग...ककरी=जोग हमें कड़ुई ककड़ी की तरह बुरा लगता है। व्याधि=विपदा, विपत्ति। जिनके मन चकरी=जिनके मन चकरी की तरह चंचल हैं।

पद ७२—बियो=दूसरा। इंदु=चंद्रमा। धरन=धरना, टेक। चपल...कियो=ये नेत्र चंचल नहीं हुए; उस ओर ताका भी नहीं। अमियरस=सुधारस।

पद ७३—पराग-पंक=फूलों के पराग का कीचड़। सरक=नशा, खुमारी। अपरस=(आपरस) अपना भेद। सरक... उघारे=शराबी की तरह शराब के नशे में अपना सब भेद खोल देने से क्या लाभ है। कुसुम=फूल। बिलमावत=विश्राम देते हैं; बहलाते हैं। का पै लेहि उधारे=किससे उधार लें।

पद ७४—रूँधौ=रोकते हो, छेंकते हो,। निर्गुन...रूँधौ= हमारा भक्ति-मार्ग राजपंथ है, उसमें तुम निर्गुण के काँटे क्यों बिछा रहे हो? परेखो कीजै=बुरा मानो। मूर=मूलधन। निबेरत=वसूलते हैं।

पद ७५—निगु^र्न...बासी=जिस निर्गुन ब्रह्म की तुम चर्चा कर रहे हो, वह किस देश में रहता है। गोपियाँ यहाँ ऊधव की हँसी उड़ा रही हैं। सौंह दै बूझति=तुम्हें कसम धराकर हम पूछती हैं, इसे हँसी मत समझो। को दासी=उसकी दासियाँ कौन हैं। कौन नारि को दासी पद को एक साथ लेने से अर्थ होगा—जिस तरह कृष्ण आज कुब्जा के दास हैं, क्या वह निर्गुण भी किसी की सेवा करता है? कौन नारि और 'को दासी' पद अलग-अलग रखना ही ज्यादा ठीक जान पड़ता है। केहि... अभिलासी=कौन-सा रस उसे प्रिय है, कैसी बातें उसे अच्छी लगती हैं। गाँसी=चुभनेवाली बात। पावैगौ...गाँसी=जो जैसा काम करेगा, वह वैसा ही फल भुगतेगा; इसलिए चुभनेवाली योग की बातें न करके जो-जो हमने पूछा है, उसका उत्तर ही हमें समझा दीजिए।

पद ७६—अछत=(होते हुए) रहते हुए। नाहिन···और=कृष्ण हमारे हृदय में रह रहे हैं; इसलिए वहाँ किसी दूसरे के लिए स्थान ही नहीं है। दूसरे अर्थात् निर्गुण ब्रह्म को वहाँ कैसे बसाया जाय? 'मेरे तो गिरिधर गुपाल, दूसरा न कोई' (मीरा) वाला भाव ही गोपियों का है। चलत···जाति=चलते-फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते, हर घड़ी श्याम की मोहिनी मूर्ति हमारे हृदय में बसी रहती है। कहत···समाइ=लोक-लाभ की दृष्टि से ऊधव जो तुम इतनी कथाएँ (निर्गुण ब्रह्म को समझाने के लिए) सुना रहे हो, वे हम सुनने-समझने की कोशिश करतीं; परंतु हमारा शरीर इस समय प्रेमपूर्ण घट के समान है, उसमें तुम्हारी निर्गुण बातों का सागर कैसे समा सकता है? सरोज आनन=कमल के समान मुख।

पद ७७—या मैं·····पावत=इसमें इन्हें क्या मिल जाता

है। महत्=महत्व, बड़प्पन, महिमा। परकृति······छाँह की=संसर्ग या छाया का ऐसा प्रभाव पड़ता है। निलज=निर्लज्ज, नंगा रहकर।

पद ७८—पानि-पल्लव······बिधान=कृष्ण के आने के दिन गिनते-गिनते हाथों में लकीरें पड़ गयी हैं। अवतंस=शिरोभूषण, मुकुट। भान=(भानु) सूर्य। कोटि······दान=कृष्ण की सुन्दरता पर करोड़ों कामदेवों की छबि निछावर करके (मुँह-दिखाई के रूप में) दान कर देनी चाहिए। कोदंड=धनुष। अवलोकनानि संधान=चितवन ऐसी है, मानों धनुष ताना हो। बंक कटाक्ष=तिरछी चितवन। कंबु-ग्रीवा=गर्दन शंख के आकार की है। जानु-बाहु=घुटने तक लंबे हाथ। ऐसा व्यक्ति प्राय: अवतार माना जाता है। कर······निधान=हाथ अमृत से भरे कमलों के समान हैं। स्याम······भान=कृष्ण के श्याम शरीर पर पीतांबर की छबि का कौन वर्णन कर सकता है। वह छवि ऐसी है, मानों काले बादलों में बिजली प्रकाशित होती (चमकती) हो। आन=अन्य, दूसरे का।

पद ७९—तब=जब कृष्ण हमारे पास थे। विषम...पुंजैं=भयंकर ज्वालावाली। वृथा···गुंजैं=यमुना का शीतल जल, पक्षियों की मीठी बोली, कमलों की सुन्दरता और सुगंध, भौंरों की मधुर गुंजार आज हमारे लिए व्यर्थ हैं; ये सब हमें आज प्रिय नहीं हैं। घनसार=कपूर। दधिसुत=(उदधि सुत) चंद्रमा। भानु भइँ भुँजैं=सूर्य की तरह जला (भूँज) रही हैं। मदन···लुँजैं=कामदेव ने मारकर हमें लुंजी कर दिया है। प्रभु=स्वामी, पति। इस शब्द का प्रयोग यहाँ सोद्देश्य है। गोपियों का आशय यह है कि जब आप हमारे पति हैं, तब क्या कामदेव द्वारा हमारी इस प्रकार दुर्दशा होना आप देखते रहेंगे? अपनी स्त्रियों की

रक्षा करने नहीं आयेंगे ? अँखियाँ···गुंजैं=आँखें गुंजा की तरह (रोते-रोते) लाल वर्ण की हो गयी हैं।

पद ८०—गुन=श्याम के गुण, लीलाएँ ; प्रेम-व्यवहार। ये···चकोर=हमारी दोनों आँखें प्रिय कृष्ण के मुखचंद के शरद-कालीन कुमुद और चकोर हैं। जिस तरह कुमुद और चकोर चंद्रमा को देखकर ही प्रसन्न होते हैं, उसी प्रकार इन आँखों को भी कृष्ण का मुख देखकर ही सुख मिलता है। परम तृपारत= बहुत प्यासे। परम···चातक मोर=दोनों आँखें चातक और मोर की तरह श्याम घनरूपी कृष्ण-दर्शन रस की प्यासी हैं। मधुप-मराल=भौंरा और हंस। मति···मीन=सुंदर चाल और हाव-भाव देखकर ये नेत्र जल की मछली की तरह प्रसन्न होते थे। चक्रवाक···दिनकर के=उनकी सूर्यकांत मणिरूपी सूर्य को देख-कर इन्हें चकवे की तरह प्रसन्नता होती थी।

पद ८१—तिरछे ह्वै जु अड़े=मोहन हमारे हृदय में जाकर तिरछे हो गये हैं। उसी से अब निकल नहीं सकते। बड़ी चमत्कारपूर्ण उक्ति है।

पद ८२—उपमा···रही=नेत्रों की एक ही उपमा रही है। सुधिकरि=सोच-समझकर। कहे···जीवत=कवियों ने इन्हें चकोर के समान कहा है, यह उपमा गलत है, क्योंकि, चकोर तो चंद्रमा को बिना देखे जीवित नहीं रहता ; परंतु ये कृष्ण के मुख-चंद्र को देखे बिना भी जीवित हैं। भ्रमर नहीं··· ठहरात=ये भ्रमर भी नहीं हैं। भ्रमर उड़कर कमल-कोष के पास पहुँच ही जाता है ; परंतु ये कृष्ण के कमल-मुख के बिछुड़ने पर भी बेकार बैठे हैं, उड़कर उसके पास नहीं जाते। पलात=भागते। घात=चोर का डर। आए······घात=हमारे नेत्र मृग भी नहीं हैं। मृग शिकारी को देखते ही भाग जाते हैं ;

परंतु ये नेत्र ऊधव-जैसे शिकारी को देखकर भी ठहरे हुए हैं; भागकर कृष्ण-रूपी उस घने वन में नहीं चले जाते, जहाँ किसी तरह का भय नहीं है। मनरंजन=मन प्रसन्न करनेवाले। अकुलात=अकुलाना, फड़फड़ाना, चंचल होना। समर=कामदेव। आशय यह कि कामवेदना सह रहे हैं, फिर भी उड़कर प्रिय कृष्ण के पास नहीं जाते। मीनता······छाँड़त=ये नेत्र हमेशा जल-भरे रहते हैं। इसलिए मीन से इनकी उपमा कुछ ठीक है।

पद ८३—बीना कर धारिबो=वीणा भी हाथ में ले लेना दूर करो। मन बहलाने के लिए वीणा भी हाथ में मत लिया करो। क्योंकि वीणा का संगीत-स्वर सुनकर, उसकी तान से मोहित होकर चंद्रमा के रथ के हिरन ठिठक जाते हैं—चलते नहीं। फल यह होता है कि चंद्रमा का रथ आगे नहीं बढ़ पाता ; न चंद्रास्त ही होता है और न रात ही बीतती है। जायसी के 'पद्मावत' में भी ऐसी ही उक्ति है—गहै बिन मकु रैन बिहाई। बीती······परिबो=प्रेम-पाश में पड़ना बड़ा कठिन है। प्रेम की पीर वही समझ सकता है जिसपर बीतती है। रहन न···गरिबो=नेत्रों से आँसुओं का बहना नहीं रुकता।

पद ८४—मलीन=उदास। स्रमजल=पसीना। अंतरतनु=भीतर तक, अच्छी तरह। आशय यह कि राधा इस लालच से सारी नहीं धुलाती कि कहीं वह पसीना न धुल जाय, जिसका संबंध प्रिय कृष्ण (की स्मृति) से है। अधोमुख=नीचा मुख किये। ज्यों···जुआरी=जिस प्रकार जुआरी अपनी पूँजी हारकर सर नीचा कर लेता है। चिहुर=चिकुर, बाल। नलिनी=कमलिनी। हिमकर=चंद्रमा, पाला। बदन···मारी=राधा का मुख उसी प्रकार कुम्हला गया है जिस प्रकार कमलिनी पाला पड़ने से कुम्हला जाती है। सहज=स्वभावतः। मृतक भई=मरने के

समान (निराश) हो गयीं। जारी=जलाया, दुख दिया।

पद ८५—हरि…अकास=तुम हमें हरि को छोड़कर शून्य ब्रह्म का भजन करने का उपदेश दे रहे हो। बरु=चाहे। उपहास=हँसी, लज्जा।

पद ८६—जतन करौ=दवा करो; पहले अपना रोग तो दूर करो। इसका आशय वही है, जो physician heald thyself वाली अँगरेजी कहावत में है। किन बेकाज ररौ=व्यर्थ क्यों बक रहे हो। उपचार=दवा, इलाज। याही……हारि=जान पड़ता है, इसी से तुमसे ऊबकर कृष्ण ने तुम्हें यहाँ भेज दिया है। अद्ध जल जोग=मरने के निकट।

पद ८७—अब……दई=अब हमारी समझ में यह बात आ गयी है कि कृष्ण के अंग-अंग से (कवियों ने) जो उपमाएँ दी हैं, वे सब ठीक हैं; क्योंकि उनके अंग आज उन्हीं उपमानों की तरह आचरण कर रहे हैं। कुंतल कुटिल=घुँघराले बाल। कुंतल··निरस गई=उनकी घुँघराली लटें कुटिल भौंरे के समान हैं, जो भोली-भाली मालती को फुसलाकर उसका रसपान करता है और जब वह नीरस हो जाती है, तब निर्मोही और कठोर की तरह उसे बहुत शीघ्र छोड़ देता है। वैसे ही कृष्ण ने हम भोली-भाली स्त्रियों के साथ पहले तो आनन्द किया और अब निष्ठुर होकर चले गये हैं। हमारी जरा भी सुधि नहीं लेते। न गहरु कियो=देर न लगायी। आनन-इन्दुबरन-सम्मुख=चंद्रमा रूपी सुन्दर मुख के सामने। करखें ते नई=खींचने और हटाने पर भी हटी नहीं। हेम हई=पाले से मारा; (चंद्रमा हिमकर कहलाता है) उसी से उसने नष्ट किया। आनन…हेम हई=कुमुदनी चंद्रमा की ओर जिस प्रकार बड़ी प्रीति से देखती है, उसी प्रकार हमने कृष्ण का मुँह निहारा और बार-बार मना करने पर

भी उधर से ध्यान नहीं हटाया। परंतु निष्ठुर चंद्रमा जैसे कुमुदनी को पाले से मार देता है, वैसी ही निष्ठुरता कृष्ण ने यहाँ से चले जाकर की है। घनस्याम=(१) श्री कृष्ण (२) बादल। रसना छिजई=जीभ घिस गयी। तन घनस्याम···सई= हमने चातक की तरह प्रेम की एक बूँद के लिए इतनी रट लगायी कि हमारी जीभ तक घिस गयी; परंतु बादलों की तरह निष्ठुर कृष्ण ने प्रेम रूपी स्वाती जल की एक बूँद भी हमें न दी। सई= गयी; मिली।

पद ८८—ता पाछे=व्रज की दशा समझने के बाद। विस्तारौ=फैलाओ, समझाओ। केतिक बीच=कितना अधिक अन्तर है। केतिक···नाहीं=विरह और परमार्थ में कितना अधिक अन्तर है, यह तुम जानते हो या नहीं? परबीन (प्रवीण)=चतुर। संतत···हौ=तुम सदा कृष्ण के पास रहते हो, कृष्ण का स्वभाव तुमने समझा ही होगा। जल···गहत हौ= जो समुद्र में डूब रहा है, वह फेन पकड़कर डूबने से नहीं बच सकता; उसी प्रकार जो कृष्ण के विरह में दुखी है, उसे निर्गुण से सांत्वना नहीं मिल सकती। सो भजन···भावै=जो गीत हमारे प्रिय कृष्ण के सम्बन्ध में नहीं है, वह हम नहीं सुनना चाहतीं।

पद ८९—पैठ करी=व्यापार करने आये हैं; दूकान लगायी है। किन करहु खरी=निर्गुन की इस अमूल्य गठरी को बेचकर दाम क्यों नहीं खड़े करते। अकरी=महँगी, बहुमूल्य। सबरी= सब। देखियत गरे परी=तुम्हारी इन बातों को हम जबरदस्ती मिली हुई वस्तु समझ रही हैं। तुम्हें कृष्ण का सखा समझकर इच्छा न होते हुए भी तुम्हारी ये बातें हम सुन रही हैं।

पद ९०—जो तुम···आयौ=बड़ी कठिनाई से हठ करके

हमने तुम्हारी ज्ञान की बातें इस मन को समझायीं। तरह-तरह के ग्रहण न करने योग्य उपायों को भी ग्रहण करके हमने योग के मार्ग पर बड़ी लगन से इसे चलाया ; परन्तु हमारे इतना प्रयत्न करने पर भी यह भटककर कृष्ण के पास (उनके ध्यान में मग्न) उसी प्रकार आ गया, जिस प्रकार जहाज से कोई पत्नी दूसरा आश्रय पाने के लिए उड़े और चारों ओर जल-ही-जल देखकर (कहीं आश्रय न पाकर) जहाज ही पर लौट आये। अहित= बुरा। अति हितहिं=बहुत भला, बड़ी लगन से। सुरसरिता··· पायो=यदि गंगाजल से भी होम किया जाय, तो अग्नि को सुख थोड़े ही मिल सकता है, उसी प्रकार जो ज्ञान की बातें तुम्हारी दृष्टि में अत्यंत महत्व की हैं, वे हमें सुखी नहीं कर सकतीं। जिहिं···जियायौ=जाते हुए प्राणों की रक्षा हो। बारक··· भायौ=एक बार प्रिय कृष्ण से मिला दो, फिर जो चाहो कर लेना।

पद ६१—बाँधौ गाँठि=सम्हालकर रख लो। गोपियाँ यहाँ व्यंग्य कर रही हैं। मरम न जानैं और=कोई दूसरा तुम्हारी इस अनुपम वस्तु का मूल्य नहीं जानता ; तुम्हारे लिए वह भले ही बहुमूल्य हो पर सबके लिए वह व्यर्थ है। ज्यौं बिप्र··· कीन्यौ=यह पंक्ति पद ६५ में आ चुकी है।

पद ६२—नातरु कहा=नहीं तो क्या। अति रुचि कै= बड़ी लगन से। झखतिं=झींख रही हैं। करनी=व्यवहार। तुम तैं···होइ=यदि यह काम तुमसे हो सके कि हमें हमारा मन मिल जाय।

पद ६३—हम लायक=हमारे योग्य। इहाँ इतननि=यहाँ बैठी हुई इतनी गोपियों में। जोगी···सौहै=माया से रहित जो योगी-यति हैं, उन्हीं को तुम्हारी ये ज्ञान की बातें अच्छी लगती हैं। कहा सुनत···कैहै=संसार में सब यही कहेंगे कि ऊधव ने

क्या उलटी बातें चला रखी हैं। देखौ धौं=समझ लो। चंदन...आँजै=भला जो स्त्रियाँ चंदन, अगर, सुगंध आदि अपने शरीर में लगाती थीं, वे भस्म (विभूति) लगाकर क्या शोभा पावेंगी? यह तो वैसी ही उलटी बात है कि अन्धी अपनी आँखों में (सुन्दर लगने के लिए) अञ्जन लगावे।

पद ६४—ये बातें=योग की उलटी-सीधी बातें, जिन्हें सुनकर हँसी आ जाती है। हँसाए=कृष्ण के जाने के समय से अब तक सारा व्रज दुखी था। आज तुमने उसे हँसा दिया। छाक=कलेवा। ताक=तार, मेल। सौज=वस्तु, सामग्री। तुमको सुगम अनीति=अनीति करना तुम्हारे लिए भी वैसा ही सुगम है, जैसा तुम्हारे सखा के लिए।

पद ६५—कुसुम रसकेली=जिन (बेलों) के कुसुमों का रस तुम पीते हो। बारे तैं=लड़कपन से। बलबीर=बलराम के भाई, कृष्ण। परस=स्पर्श। बल्ली=बेलें। अरुझीं=लिपट गयीं। बिलसत=भोगते हैं; सुख उठाते हैं; उपभोग करते हैं। जोग...ढिग लागी=सुंदर कृष्ण रूपी डार से लिपटी होने के कारण योग की हवा हमें डुला नहीं सकी।

पद ६६—आहि=है। अबलन...चाहि=हम अबलाओं की ओर तो जरा देख। काहे को...दाहि=विरह की आग में हमारा शरीर जलाकर अब उसपर नमक क्यों छिड़क रहा है? राजदोष=क्षय रोग। आशय यह कि जो क्षय से पीड़ित हो मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा है, उसे दही खिलाना कौन-सी बुद्धिमानी है। अवगाहि=स्नान करना।

पद ६७—चपल=चंचल। पकरे हुते......अँकोर=अपने मन के चोर (कृष्ण) को हमने अपने हृदय-मंदिर में लाकर प्रीति की शक्ति से बंदी बना लिया था। परन्तु वे (इतने निष्ठुर

निकले कि) हमारी प्रीति के सब बंधनों को तोड़कर, हमें हँसी की बातों में ही बहलाकर चले गये। चौंकि परी=जाते समय उन्होंने हमें हँसी की बातों में इस तरह बहला दिया था कि हमें उनका जाना जान ही नहीं पड़ा ; परन्तु उनके जाते ही जैसे हम सोते से चौंक पड़ीं ; हमें ज्ञात हुआ कि हमारे प्यारे हमारे साथ कितनी निष्ठुरता का व्यवहार कर गये हैं। जागन...... भोर=उस समय से रातें जागते और तारे गिनते ही बीतती हैं; कभी चैन से नींद नहीं आयी। सरबस लूट्यो=कृष्ण हमारा सर्वस्व लूटकर चले गये हैं।

पद ९८—ब्रजरिपु=ब्रज के शत्रु। हति-हति=मार-मार-कर। कृष्ण ने बकी, अघासुर, कालीय नाग, तृनावर्त, केशी आदि ब्रज के शत्रुओं को अपने बाल्यकाल में मारकर ब्रज की रक्षा की थी। सकंप=हृदय काँपने लगता है। बकी=पूतना। पय=दूध। निसि......छिनाय लिये=रात्रि रूपी जो पूतना आकर हमारा हृदय कँपाती है, उसके विषैले दूध से हमारे प्राण सूर्य की कृपा से ही थोड़ी देर के लिए बच जाते हैं।

पद ९९—रसाल=रसभरा, मीठा। तरनि=सूर्य। तिमिर=अंधकार। न्याय सहैं=सब कुछ उचित समझकर सह रही हैं। भोगी भ्रमर=भ्रमर की तरह निर्मोही भोगी हैं। भुवाल=राजा।

पद १००—संतत=सदैव, लगातार। सोई...लीनी—क्या अपने जी में उन्होंने उसका बुरा मान लिया है। ऐबो=(ब्रज में) आना लौटना।

पद १०१—को अराध तुव ईस=(निर्गुण) ब्रह्म की उपासना (जब हमारा मन ही नहीं है तब) कौन करे। सिथिल भईं=(सभी गोपियाँ अब) निराश-सी हो गयी हैं। जथा... सीस=जैसे बिना शीश के शरीर (निर्जीव हो जाता है)।

स्वाँसा···बरीस=अब भी हमारे शरीर में कुछ साँस बाकी है और हम प्यारे कृष्ण के मिलने की आशा में (यदि तुम आशाही दिला दो तो इसी निर्जीव और निराश दशा में) करोड़ों वर्ष जी सकती हैं। पुरवौ मन=मन की इच्छा पूरी कर दो।

पद १०२—घोष···बिगसाओ=रात होनेपर कमल मुँद जाता है और प्रातःकाल सूर्योदय होने पर खिल जाता है। इसी प्रकार आज सारे व्रजवासी रूपी कमल मुँदे (जीवन से निराश और उदास) हुए हैं। ये उसी समय खिल सकेंगे, (प्रसन्न होंगे), जब अपने प्यारे दिनमणि (सूर्य के समान कृष्ण) को सामने देखेंगे।

पद १०३—छार=भस्म। सिरजी हैं=पैदा की गयी हैं। पाहन=पत्थर के समान कठोर। अंतरगत=हृदय में।

पद १०४—जावदेक=सबको, सब गोपियों को। कमलासन=पल्थी मारकर जिस प्रकार योग साधने के लिए बैठते हैं; गोपियाँ हँसी करती हुई कहती हैं—आओ, जो ऊधव कहते हैं, वह भी कर लें और देखें कि उससे कृष्ण मिलते हैं या नहीं। षट्पद=भौंरा। मौन गही=ऊधव (गोपियों का कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम देखकर) चुप हो गये। कहुँ धुनि···जिवाए—कृष्ण के प्रेम में पागल गोपियाँ बेसुध हो रही थीं। उसी समय पपीहे का 'पी-पी' शब्द सुनकर उन्हें प्रियतम की याद आ गयी और उनके जाते हुए प्राण लौट आये। सूर कहते हैं कि इस प्रकार पपीहे ने बोलकर आज मरती हुई विरहिणी गोपियों को जिला लिया। विशेष—यह पद बड़ा मार्मिक है। गोपियाँ निर्गुण ब्रह्म-ज्ञान की बातें न समझती हुई भी योग साधने को तैयार हो जाती हैं कि अच्छा, साधन कोई भी हो, हमें तो प्रियतम मिलने चाहिए। अंतिम पंक्ति में 'पी-पी' शब्द सुनकर मृतक गोपियों के प्राण लौट आना बड़ी मार्मिक उक्ति है।

पद १०५—भली करी अब आए=तुमने इस समय आकर बड़ी कृपा की है। विधि कुलाल…घट=कुम्हार जिस प्रकार कच्चे घड़े बनाकर रख देता है, उसी प्रकार ब्रह्मा ने हम व्रज-बालाओं को कच्चे घड़े के समान कोमल स्वभाव का बनाकर रख छोड़ा था। तै तुम आनि पकाए=हम कच्चे घड़ों (कोमल स्वभाववालियों) को तुमने योग की आँच में खूब तपाकर पका डाला (कठोर स्वभाव का बना दिया)। इस उपवाक्य का अर्थ 'दरसन आस फिराए' वाली पंक्ति के बाद लगाना चाहिए। रंग दियौ…बनाए=ब्रह्मा रूपी कुम्हार ने केवल कच्चे घड़े बनाकर रख दिया था। उन्हें रँगने और उन पर चित्र बनाने की आवश्यकता थी। यह कार्य कृष्ण ने पूरा किया। उन्होंने हम कोमल स्वभाववाली व्रजबालाओं के साथ तरह-तरह की लीलाएँ और क्रीड़ाएँ करके हम पर जैसे भाँति-भाँति के रंग चढ़ाये और अनेक प्रकार से चित्रित किया; उसी प्रकार जैसे कुम्हार कच्चे घड़ों को तरह-तरह के रंगों से रँगता और उनपर चित्र बनाता है। गलन…छाए=रँगने और चित्रित करने के पश्चात् जब कृष्ण व्रज से मथुरा चले गये; तब भी ये घट कच्चे ही थे। उनके वियोग में हमारे नेत्रों से जो निरंतर जलधारा बही; उसमें इन कच्चे घड़ों को गल जाना चाहिये था। परंतु कृष्ण आने की अवधि (आशा) दे गये थे। इस आशा ने हमारी वैसी ही रक्षा की, जैसी अटारी अपने नीचे रखे हुए घड़ों की पानी की धार से करती है। अर्थात् कृष्ण-वियोग की अश्रुधारा से ये कच्चे घड़े गलने से इस कारण बच गये कि वे व्रज लौट आने की आशा-रूपी अटारी के नीचे इन्हें रख गये थे। व्रज करि… फिराए=कुम्हार आँवे में ईंधन रखकर आग सुलगा देता है; फिर उसे प्रज्ज्वलित करके घड़ों को उसमें रखता और धीरे-धीरे

घुमाता रहता है। धीरे-धीरे घड़े पक जाते हैं। ऐसा ही काम तुमने हमारे साथ किया है। व्रजमंडल को आँवा बनाकर तुमने योग के इंधन से सुरति (ध्यान) की आग जलायी है। कृष्ण-विरह में हमारी श्वाँस इस अग्नि को प्रज्ज्वलित करती रही है। कृष्ण-दर्शन की आशा के चाक में तुमने हमें फिराया है। इस प्रकार हम घड़ों को तुमने पकाया है। भए···पाए=अब ये पक्के घड़े प्रेम-जल से भरे रखे हैं। ये बड़े पवित्र हैं; क्योंकि किसी ने इन्हें छुआ नहीं है। राज···लाए=ऐसे पवित्र घट राज-दरबारों के योग्य हैं। हमारे प्यारे कृष्ण राजकाज से ही गये हैं। क्या वे इन्हें अपने हाथ से छूकर, अपने समीप रखकर कृतार्थ करेंगे ? गोपियों का आशय यह है कि योग की कष्टदायक बातें कहने के पश्चात भी हे ऊधव, अबतो हमें कृष्ण से मिला दो।

पद १०६—ससि···आवत=शरद ऋतु की पूर्णिमा को कृष्ण ने जो रास-सुख हमें दिया था, आज भी चंद्रमा को देखते ही हमें उसकी याद आ जाती है। अंतर्गत=हृदय में।

पद १०७—अवधि=समय। पराए=दूसरे के अर्थात् इंद्र के। निबिड़=घोर, घना। मधुबन=मथुरा। आशय यह है कि जो बादल दूसरों के सेवक हैं और सुरलोक में बसते हैं, वे भी अपने प्रिय चातक की प्रीति का स्मरण कर आ गये; परंतु हमारे कृष्ण, जो पास ही मधुबन में हैं और स्वतंत्र हैं, हमें कैसे भूल गये।

पद १०८—मधुप—भौंरा। इतनिहिं=इतनी थोड़ी-सी, मथुरा तो बहुत पास है फिर भी हमें भूल गये। कुटिल काक=दुष्ट कौआ। कोयल का बच्चा कौए पालते हैं; परंतु बड़ा होने पर वह उनकी ममता और उपकार भूलकर अपने सजातियों में जा मिलता है। ऐसी दुष्टता का काम तो गोपियों की दृष्टि में

कृष्ण ने भी किया है। तनहूँ मन कारे=शरीर के साथ-साथ मन के भी काले ; दुष्ट हैं।

पद १०९—सहिबे को=सहना पड़ेगा। ऐन=स्थान। या कहँ=अपने निर्गुण ब्रह्म को। सुचैन=सुख, आनंद।

पद ११०—विदमान=विद्यमान, मौजूद। अबधौं=इतना कष्ट तो इन्हें मिल ही रहा है, अब तुम और क्या करना चाहते हो।

पद १११—कुंभ काँचे ज्यों=कच्चे घड़े की तरह। रस-रीति=प्रेम की रीति। जलचरी बपुरी=बेचारी मछली।

पद ११२—बीता को=बालिश्त भर का, बहुत छोटा। भीता=डरी हुई। मीता=मित्र, कृष्ण। पीता चीता को=कौन नशा पीनेवाला चेता है ? अर्थात् कोई नहीं।

पद ११३—मधुबनियाँ=मीठी बात बोलनेवाला। कोइल-सुत=पद १०८ की व्याख्या देखिए। कुहकुहाय=कूकती है। लगाय=लगन, प्रीति।

पद ११४—सुरभी=गाय। भीति=दीवार। बिजन=पंखा। चपि जात=दब जाते हैं।

पद ११५—बचन बिसाहि=वचनों से अर्थात् कृष्ण के पास हमारा संदेश पहुँचाकर तू हमें खरीदकर अपना दास बना ले। पलटे=बदले में, विनिमय में। सेंति बिसाहु=मुफ्त ही खरीद ले। प्रानन के···ढेरी=संसार में जो यश प्राणों के बदले में (जी तोड़कर कोई काम करने पर) मिलता है, वही यश तू मुफ्त में (कृष्ण के पास केवल दो शब्द बोलकर, हमारा संदेश पहुँचा कर) खरीद ले, प्राप्त कर ले। हेरी=देखी। ह्वै अबलहिं··· घेरी=प्यारी अबलाओं (गोपियों) को तुम्हारे शत्रु अनंग ने घेरा है, पीड़ित कर रखा है।

पद ११६—ब्रज-अंतर=ब्रज में। निमिष=ज़रा भी। पहुप

गए=फूल न रहने पर। क्यों पतियात=तुम्हारी बातों का कौन विश्वास करे ?

पद ११७—भई···जारी=विरह रूपी ज्वर में जल गयी है। पलिका=पलँग। तरंग···भारी=जमुना में जो तरंगे उठ रही हैं, वह मानों ज्वर के कारण उठनेवाली तड़पन है। तट···चूर=किनारे की बालू इस ज्वर-पीड़िता की ओषधि अर्थात् चूर्ण है। स्वेद पनारी=पसीने की धारा। बिगलित···पुलिन=किनारे पर जो कुश और काँस (घास) लगी है वह मानो जमुना के रूखे-सूखे बिखरे हुए बाल हैं। निसि दिन···अति=रात-दिन जो चकई बोलती है, वह मानों उन्माद की दशा में यमुना का व्यर्थ बकना है। फेन मनौ अनुहारी=उन्माद की अवस्था में फेन निकल आता है; जमुना का फेन इसी के समान है। जो जमुना गति=गोपियों का आशय यह है कि जड़ प्रकृति की जब तुम्हारे वियोग में ऐसी दशा है, तब हमारी दशा का तो तुम अनुमानकर ही सकते हो। अब तुम्हारे न आने से हमारी वही दशा होगी, जो ज्वर बिगड़ जानेपर रोगी की होती है। क्या अब भी तुम नहीं आओगे?

पद ११८—जातें...सनेहु=हमारा स्नेह ही झूठा और कपट-पूर्ण था; इसीसे हमें इतने दुख मिल रहे हैं। बेहु=बेध, छेद। फागुन मेहु=फागुन के जल-रहित बादलों की तरह शरीर जीवन-रहित हो जायगा।

पद ११६—लीने......चढ़ी=इतनी प्रवाहपूर्ण है कि दोनों किनारों से जाकर लग गयी है; लबालब आँखें आँसुओं से भरी हुई हैं। गोलत...बोरति=आँख की पुतली एक नौका के समान है। नदी का बहाव इतना तेज है कि यह नौका भी चल नहीं पाती और अपने पाल-सहित उसमें डूबी जाती है। ऊरध स्वाँस समीर=लंबी साँस तेज हवा है, जिससे नदी में लहरें उठती हैं।

तरंगन......तोरति=तिलक नदी किनारे के वृक्ष के समान है; उसे यह अपनी तरंगों से गिरा देती है। तिलक एक वृक्ष भी होता है, और तिलक उन चित्रों को भी कहते हैं जो वैष्णव शरीर पर बनाते हैं। आँसुओं से यही चित्र धुल जाते हैं, जैसे नदी का प्रवाह किनारे लगे वृक्षों को गिरा देता है। कज्जल......कपोल= आँसुओं के साथ अधर और कपोल पर जो काजल बह आया है, वह मानों नदी-किनारे से दूर तक फैली हुई गंदी कीचड़ है। रहे पथिक......मुख-बोल=हाथ, पैर और मुँह के वचन, ये मानों पथिक के समान हैं, जो इस बढ़ी हुई नदी को देखकर जहाँ के तहाँ खड़े रह गये हैं। आशय यह कि न हाथ-पैर से कुछ काम होता है और न मुँह से शब्द ही निकलते हैं। सुकर=सुंदर हाथ, शुभ हाथ।

पद १२०—पिराति=दुखती हैं। सिरात न कबहूँ=कभी शीतल (सुखी) नहीं होती; 'आँखें ठंडी होना' मुहावरा है। चितवति रहतिं=एक टक देखती रहती हैं। निमेष न लखतिं= कभी पलक नहीं झपकाती। बाइ=वायु। उघारी=खुली हुई। भरि......उघारी=कृष्ण की विरह-वायु मानो इनमें भर गयी है जिससे ये सदा खुली रहती हैं। सलाकहिं=लोहे की सलाई को। सुनि......तुम्हारी=जो आँखें इतने कष्ट भोग रही हैं, वे तुम्हारी ज्ञान-सलाइयों की पीड़ा कैसे सह सकेंगी? सुअंजन आँजि= काला अंजन आँखों में लगाकर। कृष्ण का रूप भी श्याम है। सुअंजन...हमारी=यदि तुम इन आँखों का दुख दूर करना चाहते हो, तो कृष्ण के रूप-रस का अंजन लाकर लगा दो। आशय यह कि कृष्ण का दर्शन होते ही इनकी पीर दूर हो जायगी।

पद १२१—घनेरो=घना, बड़ा। जाजरि नाव=हमारी नाव जर्जर और पुरानी है। सबेरो=सब। गए=कृष्ण के चले

जाने पर। बेरो=बेड़ा। जाजरि नाव......ब्रज बेरो=हमें संसार-सागर के पार उतरना है। अब तक हम निश्चिंत थीं; क्योंकि कृष्ण हमारे साथ थे। अब वे हमें छोड़कर चले गये हैं। हमारी नाव जर्जर और पुरानी हो गयी है; हमारा साथ भी ऊधव ऐसे बुरे लोगों का है और समस्त ब्रजबेड़ा आज थक-सा गया है। तब हम पार कैसे उतरेंगी?

पद १२२—ताते=इसलिये। नादरस=संगीत का आनंद। जोवत=देखते हुए। रीते=खाली।

पद १२३—ह्याँ को मन=क्या उनका मन कभी यहाँ आने का होता है? क्या वे कभी हमारी सुधि करते हैं? बापुरी=बेचारी, अबला। हटकत हू=हटाने पर भी। धूताई=धूर्त्तता, दुष्टता। विरद-लाज=यश की लाज। ह्याँ की=ब्रज की।

पद १२४—सुसारि उरहनो=हमारा संदेश भरा उलाहना। संधि-संधि=धीरे-धीरे। बढ़िया महँ=विरह-प्रवाह में।

पद १२५—बहिबो नाहिं निबारै=बहना बंद नहीं करती है। भँवत रहै=घूमता रहता है। तन गारै=शरीर घटाता-बढ़ाता रहता है। कंट भए=काँटे हो गये, कमलनाल में महीन-महीन काँटे होते हैं। छारै=खारी। बानि......विधि ही=सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री होकर विधि के विरुद्ध उनकी स्त्री भी हुई। केहि विद्या उपचारै=किस विद्या से अपना उपचार करें; किस प्रकार हमारा दुख दूर हो सकता है।

पद १२६—जरे पर जारत=जले को और जला रहे हो, मरे को और मार रहे हो। कुबची=बुरी बात कहनेवाला। बोयो आप लूनिये=अपना बोया आप ही काटो; अपने किये का फल तुम ही भोगो। निखारौ=(अपने निर्गुण की उलझन) आप ही सुलझाओ।

पद १२७—इतौ न समुझि परै=तुम इतना भी नहीं समझते। कोकनद—लाल कमल। सरै=जाता है। अनरै=अनादर करता है। मृग-अंकहिं=चंद्रमा को। मराल=हंस; यह मुक्ता (मोती) चूंगता है। निघटत निपट=बिलकुल घटते ही।

पद १२८—हंस=यह पक्षी दूध का दूध और पानी का पानी करने अर्थात् सच्चा न्याय करने के लिए प्रसिद्ध है। गोपियाँ यहाँ व्यंग्य करती हुई कहती हैं कि मथुरा में दो ही सच्चे न्यायी हैं। गंस=मन की कुटिलता, दुष्टता। इनहिं बधायो कंस=कंस को इन्होंने ही मरवाया है। उजागर बंस=वंश को उज्जवल करने वाले। यहाँ गोपियाँ व्यंग्य कर रही हैं। मन भ्रंस=मन व्याकुल होता है।

पद १२९—अंगार अघात=कवि-प्रसिद्धि है कि चकोर अंगार चुगता है। कोरि काठ=कड़ी लकड़ी। हित=भलाई, प्रेम।

पद १३०—टाँड़=बाँह में पहनने का एक गहना। कर...भई =कृष्ण के वियोग में गोपियाँ इतनी दुबली हो गयी हैं कि उनकी कोमल कलाइयों का कंकन बाहु में पहनने की टाँड़ हो गया है।

आवन······दई=बहुत जल्दी आने को कहा था। कागर=कागज। मुख······कहियो=इसे जबानी ही कह देना।

पद १३१—दुसह=न सहने योग्य। जिय······समात=प्राण शरीर ही में समा जायँगे; प्राणांत हो जायगा।

पद १३२—कृसगात=दुबली-पतली। हँकरति=(कृष्ण का) नाम लेने पर हुँकरती हैं, रँभाती हैं। गोपियों का आशय यह है कि मूक पशुओं की जब इतनी दयनीय दशा है, तब हमारी दशा का अनुमान तुम कर सकते हो।

पद १३३—ढोटा=पुत्र। ताको कहा बनैहैं=(हमारा उनका

जो पुराना संबंध है) उसके संबंध में क्या कहेंगे ; अर्थात् उसे तो स्वीकार करना ही होगा।

पद १३४—दव=आग। सिरात=ठंडी होना। छार=राख। तारे=आँख की पुतलीरूपी बादल। प्रतिपारे=प्रतिपाले, पाला, रक्षा की। बधिक-वियोग बिडारे=वियोगरूपी बधिक ने मार डाला।

पद १३५—पहिंचानि=परिचय, संबंध। रानी=देवकी। बारौं ऐसी हाँसी=ऐसी हँसी चूल्हे में जाय ; ऐसी हँसी, जिससे हमारी जान पर आ बनी है, हमें पसंद नहीं है। भरि लेत हियो=हृदय भर लेना, दुखी होना। परिधान=वस्त्र। सचु=सुख।

ऊधव की पराजय

गोपियों के प्रेम के सामने ऊधव को झुकना पड़ता है। यह पराजय दो रूपों में हुई। पहली बात तो यह थी कि ऊधव अपने निर्गुण ब्रह्म की साधना के लिए गोपियों को तैयार न कर सके—तैयार करना तो दूर की बात, गोपियों को पूरी बात सुनने को शांत तक न रख सके—और दूसरी यह कि उन्होंने स्वयं सगुण की महिमा स्वीकार करते हुए कहा— 'हौं भयो सगुन को चेरौ', उन्हें अब ईश्वर की निर्गुण सत्ता और अद्वैत ब्रह्म की साधना पर पूर्ववत् विश्वास न रह गया। अपने ज्ञान और पांडित्य पर भी उन्हें जो गर्व था, वह जाता रहा। वे गोपियों की सच्ची भक्ति और प्रीति देखकर प्रभावित होते हैं तथा प्रेम और भक्ति को ज्ञान और योग से बढ़कर समझने लगते हैं।

पद १३६—चकितवंत=चक्कर में, आश्चर्य में। जो मैं··· नेरौ=ब्रह्म-ज्ञान-संबंधी गीता की जो बातें मैंने तुम्हें सुनायीं, वे तुम्हारे प्रेमपूर्ण हृदय को स्पर्श भी न कर पायीं ; प्रभाव पड़ना तो दूर की बात है। अति··· केरौ=हरि का दूत बनकर मैं यहाँ

आया था ; परंतु अपनी अज्ञानता के कारण मैं कुछ तथ्य की बातें न कह सका। घनेरौ=घनिष्ठ। बेरौ···बेरो=योग का बेड़ा डुबाकर, योग की बातें छोड़कर।

ऊधव और कृष्ण

गोपियों की सच्ची प्रीति और उत्कट भक्ति की सराहना करते ऊधव व्रज से लौटे। उनका गर्व टूट गया, उनका अभिमान मिट गया। कृष्ण ने उन्हें गोपियों के पास प्रेम और भक्ति की महिमा समझने के लिए ही भेजा था। ऊधव के विचारों में अब कृष्ण के इच्छानुसार ही परिवर्तन हो गया। व्रज से लौट कृष्ण के पास जाकर जो शब्द ऊधव ने कहे हैं, उनसे यह बात स्पष्ट होती है।

पद १३७—अरघ=सम्मानार्थ जल देना। पानि पदुम=हाथरूपी कमल वे चढ़ाती हैं।

पद १३८—हेम-हत—पाले के मारे हुए। आशय यह कि पाला पड़ने से कमल जिस प्रकार मुरझा जाता है, वैसे ही तुम्हारे वियोग के मारे समस्त व्रजवासी दीन, मलीन और उदास हो रहे हैं।

पद १३९—जिय उमगत=हृदय में उमंग उठती है। कस=कैसा। काढ़ि···माखी=दूध की मक्खी की तरह उन्होंने मुझे निकाल दिया है ; अर्थात् वहाँ जो सुख मुझे मिल रहा था, वह अब नहीं मिल सकता।

पद १४०—गवन···कीन=मेरे पास आना चाहा। छुद्रावलि करधनी। हरि···लीन=कृष्ण के चरण-कमलों में दर्शनों की आशा से वे लीन हैं।

पद १४१—मेरे···भयो=हवा में भूसा जैसे उड़ जाता है, वैसे ही मेरी सारी उक्तियाँ उन्होंने चुटकियों में उड़ा दीं। सकल=सब कुछ ; संसार की दूसरी बातें।

पद १४२—कहिबे मैं···राखी=ज्ञान और योग की बातें जितनी तरह से मैं समझा सकता था, मैंने समझायीं ; कोई कोर कसर नहीं रखी। मुख···भाखी—जो कुछ मेरे मुँह में आया, मैंने कहा। पचि=हारकर, थककर। हृदय परिहस भीन=हृदय खेद और दुख से भर गया। श्री मुख की सिखई—आपकी सिखायीं हुई बातें। ग्रंथन···कहानी=ग्रंथों में ज्ञान और योग की जो बातें अब तक मैंने पढ़ी थीं, वे सब कहानीमात्र रह गयीं; झूठी सिद्ध हो गयीं। उठी अबुहानी=सब की सब एक साथ बोलने लगीं।

पद १४३— वै मेरे···ओढ़ाऊँ=उन्होंने प्रेम और भक्ति के आवेश में मेरा भी शृंगार करना आरंभ कर दिया। तब ज्ञान की बातें उन्हें कैसे समझाता। कंथा=गुदड़ी, सन्यासियों के काम की चीज। हिय की फूटी=हृदय की आँख फूटना, ज्ञानहीन। एक आँधरी·····खराऊँ—मेरा उन्हें ज्ञान सिखाने का प्रयत्न वैसा ही मूर्खतापूर्ण था, जैसे कोई ज्ञानहीन अंधा खड़ाऊ पहनकर दौड़ने का प्रयत्न करे। ऐसा व्यक्ति गिरकर अपने हाथ-पैर न तोड़ लेगा तो करेगा क्या ? परदरसी···पठाऊँ=सब दर्शन शास्त्रों की ज्ञाता हैं। उन्हें ज्ञान की बातें सिखाने का प्रयत्न ऐसी ही मूर्खता का था, जैसे किसी ज्ञानी को ककहरा पढ़ाया जाय।

पद १४४—सचु=सुख। ब्याज करि=बहाने से। सकल···स्रम=जन्म भर परिश्रम करके मैंने जो सब शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया है। श्यामा=राधा।

पद १४५—अवसेर=दुख, कष्ट। भावतो=प्रिय।

कृष्णोद्गार

ऊधव के भरे हुए हृदय की गद्गद कंठ से निकली सहज प्रेमयुक्त बातें सुनकर कृष्ण का सूखा घाव जैसे हरा हो गया।

प्रेम-प्रवर कृष्ण के मन में बाल्यकाल की मनोरम स्मृतियाँ जाग उठीं। स्नेहमयी माता यशोदा और पिता नंद, प्रेम में विभोर सुन्दरी ब्रजबालाएँ, उन्हीं पर गर्व और मान करनेवाली सुकुमार प्रेममयी कोमलांगी राधा, प्यारे ग्वाल-बाल, सभी के निष्कष्ट, सात्विक और सरल व्यवहार के मार्मिक दृश्य उनके सामने नाचने लगे। प्यारी गैयों और हरी-भरी यमुनातटवर्ती कुंजों का भी स्मरण उन्हें हो आया। उनका हृदय इसी समय मूक स्वर से रो उठा। सूर का अगला पद कितना मार्मिक है, सहृदय ही समझ सकते हैं।

पद १४६—हंस-सुता=सूर्य की कन्या, यमुना। खरिक=गैयों का बाड़ा। मुकताहल=मोती।

गोपियों के विरह का दूसरा कारण

कंस की मृत्यु के पश्चात जरासंध ने १७-१८ बार मथुरा पर आक्रमण किया। अंतिम आक्रमणों के समय मथुरा की साधारण प्रजा को युद्ध के अनिवार्य कष्टों से बचाने के लिए कृष्ण द्वारिका चले गये। जब यह सूचना गोपियों को मिली, तो उनकी रही-सही आशा भी जाती रही। अब तक उन्हें कभी-कभी प्रिय-संदेश भी मिल जाते थे; अब वे उससे भी वंचित हो गयीं।

पद १४७—सोध=खबर। अवधि······बौरायो—लौटने की आशा में इतने दिन न जाने कैसे बिताये हैं; अब हमारा मन पागल हो जायगा।

पद १४८—बिसूरि=रो-रो कर।

पद १४६—को आवै हो=जब इतना पास रहते हुए भी कोई न आया, तब इतनी दूर से कौन आवेगा।

पद १५०—गए निकट जल-सागर=सागर के पास (जहाँ उन्होंने द्वारिकापुरी बसाई है)। दुखदागर=दुख देनेवाले, दुख की खान।